शिक्षण विधियाँ

हिन्दी विषय शिक्षण विधियाँ –

(अ) 1. अनुकरणात्मक विधि
2. इकाई विधि
3. प्रत्यक्ष विधि
4. व्याकरण–अनुवाद विधि
5. द्विभाषी पद्धति
6. सैनिक विधि
7. ध्वन्यात्मक विधि
8. दूरस्थ शिक्षण
9. वाचन–विधि
10. पर्यवेक्षित अध्ययन विधि
11. आगमन–निगमन विधि
12. अभिक्रमित अनुदेशन विधि
13. रसास्वादन विधि
14. सूत्र विधि
15. भाषा–संसर्ग विधि
16. भाषा शिक्षण यंत्र – उपकरण विधि
17. साहचर्य विधि
18. व्याख्यान – विधि
19. प्रदर्शन विधि
20. श्रुतलेखन – अभ्यास विधि
21. दल–शिक्षण विधि
22. भाषा – प्रयोगशाला विधि
23. व्यतिरेकी विधि
24. हरबर्टीय विधि
25. समवाय विधि

(आ) भाषा शिक्षण के प्रमुख शिक्षण–कौशल, सूक्ष्म शिक्षण योजना, इकाई पाठ योजना की अवधारणा एवं प्रारूम का व्यावहारिक ज्ञान, शिक्षण सहायक सामग्री का कक्षा शिक्षण में उपयोग, भाषा शिक्षण में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन।

हिन्दी साहित्य चैनल

1.अनुकरण विधि

अनुकरण का अर्थ है कि किसी आदर्श की नकल करना। अनुकरण विधि में बालक अपने शिक्षक का अनुकरण कर लिखना, पढ़ना व नवीन रचना करना सीखता है। इस विधि में शिक्षक बालक को प्रारम्भ में अक्षर ज्ञान कराना प्रारम्भ करता है। इस विधि में बालक अनुकरण करके सीखता है इस लिए इस विधि को अनुकरण विधि कहा जाता है। इस विधि के अन्तर्गत बालक शिक्षक के उच्चारण को सुनकर वाचन करना सीखते हैं। पहले शिक्षक बोलता है, फिर बच्चे उसका अनुसरण करते है। इस विधि के आधार पर ही शुद्ध उच्चारण को ही भाषा शिक्षक का सर्वश्रेष्ठ गुण माना जाता हैं।

अनुकरण तीन प्रकार का होता है–

1. लिखित अनुकरण :

लेखन हेतु दो प्रकार का अनुकरण होता है –

(अ) रूपरेखा अनुकरण– मुद्रित पुस्तिकाएँ जिनमें अक्षर या वाक्य बिन्दू रूप में लिखे होते है। बालक उन बिन्दुओं पर पेन्सिल या बालपैन फेरता है और अभ्यास करके अक्षरों या शब्दों को लिखना सीख जाता है, जैसे क्।

(ब) स्वतंत्र अनुकरण– अध्यापक श्यामपट्ट पर, स्लेट पर या अभ्यास पुस्तिका पर अक्षर लिख देता है और बालक से कहता है कि वह नीचे स्वयं उसी प्रकार के अक्षर लिखे जैसे– 'क' को देखकर बालक भी ऐसा ही लिखने का प्रयास करें।

2. उच्चारण अनुकरण :

उच्चारण अनुकरण प्राथमिक स्तर पर छात्रों को शुद्ध बोलना सीखाने हेतु उपयोगी है। इस पद्धति में अध्यापक एक–एक शब्द कहता जाता है और बालक उस शब्द की ध्वनि का अनुकरण करते चलते है। अनुकरण विधि उन भाषाओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है जहाँ पर एक अक्षर की एक से अधिक ध्वनियों होती है अथवा जहाँ पर लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है।

3. रचना अनुकरण विधि :

- माध्यमिक स्तर पर छात्रों को रचना जैसे– प्रार्थना पत्र, निबंध आदि सीखानें हेतु उपयोगी है।
- छात्र दिये हुए विषय पर उसी के अनुरूप रचना करने का प्रयास करते हैं, उदाहरणार्थ दीपावली का लेख बताकर होली पर लेख लिखवाना।
- यह विधि पूर्णतः अमनोवैज्ञानिक।
- इसमें छात्रों की भाषा तो अपनी होती है किन्तु शैली के लिए उन्हें आदर्श रचना पर ही निर्भर रहना पङता है।
- यह विधि उच्च कक्षाओं के लिए ही उपयुक्त हो सकती है।

विशेषताएँ :

- अनुकरण वाचन के बाद उच्चारण अभ्यास करवाया जाता है।
- बुनियादी शिक्षा में अनुकरणात्मक विधि सफलतम विधि है।
- अनुकरणात्मक विधि में अध्यापक को अच्छे आदर्श प्रस्तुत करने होते है।
- अनुकरण विधि में बालक अपने शिक्षक का अनुकरण कर लिखना, पढ़ना व नवीन रचना करना सीखता है।

हिन्दी साहित्य चैनल

2. इकाई शिक्षण विधि

- यह वर्तमान समय की महत्वपूर्ण व आधुनिक विधि मानी जाती है। हेनरी सी.मॉरीसन ने 1956 में सर्वप्रथम पाठयोजना तैयार करने के लिए इकाई विधि दी थीं जो बाद में शिक्षण विधि के रूप में स्थापित हुई। इसलिए इस विधि के प्रवर्तक – एच.सी. मॉरिसन माने जाते है। इकाई विधि में सर्वप्रथम हरबर्ट ने जो योजना प्रस्तुत की उसे हरबर्ट की पंचपदी कहा जाता है। इकाई विधि को यूनिट सिस्टम भी कहते है। शिक्षा के क्षेत्र में सामान्य रूप से इस विधि का प्रयोग 1920 ई. से हुआ।

इस विधि में सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को कुछ खण्डों में बाँटकर 'यूनिटस' बना ली जाती हैं और प्रत्येक यूनिट में उससे सम्बन्धित उपलब्धियों का समावेश कर छात्रों को उनका अध्ययन कराया जाता है। इकाई विधि की सबसे बडी उपलब्धि यह है कि इसमें विद्यार्थी गिने–चुने प्रश्नों का उत्तर पढ़कर ही परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाता अपितु उसे समग्र पाठ्यक्रम का अध्ययन करना पढ़ता है।

इस विधि को समझने से पहले हमें इकाई का अर्थ जान लेना चाहिए। इकाई एक ऐसा शैक्षणिक साधन है जो छात्रों को सीखने सम्बन्धी क्रियाओं में शारीरिक एवं मानसिक रूप से व्यस्त रखता है और उन्हें नयी परिस्थितियों के साथ समायोजन कर सकने के योग्य बनाता है।

1. परिभाषाएँ:–

मॉरीसन – इकाई वातावरण संगठित विज्ञान कला या आचरण का एक व्यापक एवं महत्वपूर्ण अंग होती है। जिसे सीखने के फलस्वरूप व्यक्ति में सामंजस्य आ जाता है।
थॉमस एम.रिस्क – ''इकाई किसी समस्या या योजना से संबंध जोडने वाली क्रियाओं का अध्ययन करती है।''
हैनरी हैरप – ''इकाई किसी विषय का बडा उपविभाग होता है जिसका कोई मूलभूत सिद्धान्त या प्रकरण के अनुसार ऐसे ढंग से नियोजित किया जाता है जिससे की उन्हें विषय के आवश्यक तत्वों का पूर्ण ज्ञान हो जाए।''
डॉ. माथुर के अनुसार – ''इकाई का अर्थ वास्तव में अनुभव या ज्ञान को एक सूत्र में पिरोना है।''
वेस्ले तथा रॉन्स्की – ''इकाई सीखने वाले के लिए महत्त्वपूर्ण अनुशीलनों को प्रभावित करने हेतु बनायी गयी सूचनाओं तथा अनुभवों की एक संगठित व्यवस्था है।''
सी.वी.गुड के अनुसार – ''इकाई किसी पाठ्यक्रम, पाठ्यवस्तु, विषय क्षेत्र, प्रयोगात्मक कलाओं तथा विज्ञानों का और विशेषकर सामाजिक अध्ययन का प्रमुख उप–विभाजन है।
बॉसिंग के अनुसार – ''इकाई अर्थपूर्ण एवं एक–दूसरे से सम्बन्धित क्रियाओं की एक व्यापक श्रृंखला है जो विकसित होने पर बालको के उद्देश्यों की पूर्ति करती है और उन्हें महत्वपूर्ण शैक्षिक अनुभव प्रदान करती है जिनके फलस्वरूप उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन होता है।''
एन.सी.ई.आर.टी. के अनुसार – ''इकाई एक निर्देशात्मक युक्ति है जो छात्रों को समवेत रूप में ज्ञान प्रदान करती है।''

2. इकाई के प्रकार:–

किसी भी इकाई के ज्ञान के साधन, अध्यापन, सहायक साम्रगी, उद्देश्य, मूल्य, उपलब्धियाँ, सौन्दर्य–प्रक्रिया, अनुभव आदि अनेक पहलू होते हैं। किसी एक इकाई में किसी एक पहलू पर बल दिया जाता है तो दूसरी में किसी अन्य पहलू पर।

इकाई में जिस पहलू पर बल दिया जाता है वह इकाई वैसी ही कहलाती है। यदि इकाई में ज्ञानार्जन पर बल दिया जाता है तो इकाई ज्ञानात्मक कहलायेगी। यदि इकाई मे सौन्दर्य का बाहुल्य है तो इकाई सौन्दर्यात्मक कहलायेगी, इकाई में अनुभवों की अधिकता होने पर इकाई अनुभवात्मक हो जायेगी।

साधनात्मक इकाई :– ''साधनात्मक इकाई किसी बङे पाठ से सम्बन्धित शैक्षणिक सामग्री तथा क्रियाओं का संग्रह है।'' साधनात्मक इकाई का निर्माण शिक्षक–समूह तथा शिक्षा–विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। इसके निर्माण में पाठ्यक्रम–निर्माताओं, शिक्षा विभाग, शिक्षा–संस्थाओं तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं की सहायता ली जा सकती हैं। इनका निर्माण छात्रों के किसी एक समूह–विशेष के लिए नहीं किया जाता है वरन् यह तो एक विशेष स्तर के समस्त छात्रों तथा समस्त विद्यालयों के लिए बनायी जाती हैं। निर्माण के उपरान्त इसे मुद्रित कराया जाता है और बाजार में विक्रय किया जाता है। इनमें किसी एक स्तर पर विषय की किसी एक इकाई की शैक्षणिक व्यवस्था की विस्तृत रूपरेखा एवं विषय–वस्तु दी हुई होती है।

अध्यापनात्मक इकाई:– साधनात्मक इकाई छात्रों के किसी विशिष्ट समूह के लिए नहीं बनायी जाती हैं, किन्तु अध्यापनात्मक इकाई का निर्माण अध्यापक द्वारा छात्रों के किसी विशिष्ट वर्ग हेतु किया जाता है। इसके निर्माण में अध्यापक साधनात्मक इकाई की पूरी सहायता लेता है। अध्यापनात्मक इकाई साधनात्मक इकाई के आधारों से पृथक नहीं की जा सकती है। साधनात्मक इकाई पर्याप्त मात्रा में अध्यापनात्मक इकाई को प्रभावित करती है। जहाँ तक अध्यापनात्मक इकाई की रूपरेखाओं का प्रश्न है वह साधनात्मक इकाई के समान ही होती है।

शिक्षाशास्त्री रिस्क के अनुसार इकाई विधि के तीन मनोवैज्ञानिक सोपान हैं–

1. प्रस्तावना 2. विकास 3. पूर्ति

हरबर्ट स्पेन्सर ने इसे पांच भागों में विभक्त किया है। यह पांच भाग दैनिक पाठ योजना के चरण माने जाते है।

मॉरीसन ने इकाई विधि को सात भागों में विभाजित किया है। इकाई विधि का अर्थ एक ज्ञान के समूह से है, जिसका अध्यापन संबंधित अध्यापक के द्वारा कराया जाता हैं। यह गेस्टाल्टवाद से प्रभावित है, जिससे ज्ञान के एकीकृत बिन्दुओं पर प्रकाश डाला गया है।

3. इकाई विधि के शिक्षण पदः–

- डॉ. मॉरीसन द्वारा पद निम्नानुसार हैं–
- जाँच– इस शिक्षण पद में अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों के लिए निर्धारित विषय की जाँच की जाती है। इसकी विधाएँ हैं – चर्चा, मौखिक प्रश्न, लिखित प्रश्न आदि।
- इकाई प्रस्तुतीकरण – इकाई के ज्ञान को भाषण, कहानी, प्रश्नोत्तर नाटकीकरण आदि विधि अथवा विधाओं द्वारा सहायक सामग्री के माध्यम से प्रस्तुत करता है।
- आत्मीकरण– बालकों ने जो कुछ पढ़ा है, उसे स्व–अध्ययन के लिए चर्चा, अभ्यास, प्रयोगशाला अध्ययन आदि विधियों को अपनाया है।
- सुव्यवस्थीकरण– बालकों के विचारों को क्रमबद्धता बनाये रखने के लिए पढ़ाई गई विषय वस्तु पर लेख तैयार करवाया जाता हैं
- सामाजिक अभिव्यक्तिकरण– बालक पढ़ी इकाई के ज्ञान को कक्षा के सम्मुख रखता हैं और सभी छात्र उस पर चर्चा करते है। चर्चा के पश्चात् आवश्यक सुधार कर पुनः लेख लिखवाया जाता है।

4. इकाई विधि के प्रमुख गुण –

1. इस विधि द्वारा प्रत्येक अध्याय को छोटी–छोटी इकाइयों में बाँटकर शिक्षण कराया जाता हैं, जिसमें बच्चे विषय–वस्तु को जल्दी ग्रहण कर लेते हैं।
2. इस विधि के द्वारा प्रत्येक पाठ को विभिन्न छोटी–छोटी इकाईयों में बाँटकर छात्रों को उपलब्ध करवाया जा सकता है।
3. छात्रों में सहयोग, विनम्रता, नेतृत्व, सहकारिता, धैर्य, सहनशीलता आदि गुणों का विकास किया जा सकता हैं। इसके अतिरिक्त छात्रों में उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने की भावना उत्पन्न की जा सकती है।
4. इसके द्वारा छात्रों में योजना बनाने का गुण उत्पन्न किया जा सकता है।
5. यह कक्षा–कार्य को अधिक साभिप्राययुक्त, रोचक तथा सक्रिय बनाती है।
6. इसके द्वारा छात्रों में स्वाध्याय की आदत का निर्माण किया जा सकता है।
7. यह विधि विभिन्न प्रकार के कौशलों के विकास के लिए प्राकृतिक परिस्थितियाँ प्रदान करती है।
8. यह विधि छात्रों में पूरक सामग्री के प्रयोग की भावना को बढ़ाती है।
9. इस विधि मे भी छात्र योजना विधि या समस्या विधि की तरह क्रियाशील रहते है।
10. इकाई का निर्धारण छात्र की रूचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुसार किया जाता है।

5. दोष–

1. पाठ्यक्रम को नियत अवधि में पूरा करना कठिन कार्य है।
2. प्रकरण या विषय सामग्री से सम्बन्धित विभिन्न इकाइयों का ठीक से निर्माण नहीं हो पाता या अन्तःक्रमिकता का अभाव रहता है।
3. सभी प्रकार की विषय–वस्तु को इकाइयों में विभिक्त करके नही पढाया जा सकता है।

3. प्रत्यक्ष विधि

प्रत्यक्ष विधि का अर्थ होता है–वस्तुओं को प्रत्यक्ष में दिखाना। इस विधि को सुगम पद्धति अथवा निर्बाध विधि अथवा प्राकृतिक विधि भी कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि वस्तुओं व जीव–जन्तुओं का चित्र अथवा प्रतिमान दिखाकर क्रियाओं को करके दिखाना।

इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रांस में 1901 में अंग्रेजी भाषा के लिए किया गया। इस विधि का प्रयोग सर्वप्रथम 1901 ई. में फ्रांस राष्ट्र में 'श्री गुइन' महोदय द्वारा किया गया। व्याकरण अनुवाद के विरोध में प्रत्यक्ष विधि का अस्तित्व 17 वीं शताब्दी में केमिसयन और 18 वीं शताब्दी में जान बैसडो ने इस विधि का समर्थन किया।

प्रत्यक्ष विधि के उपनाम – नवीन पद्धति, नैसर्गिक पद्धति, तार्किक पद्धति, उपर्युक्त पद्धति, स्वनिकी पद्धति, अनुकरण पद्धति, वार्तालाप पद्धति।

प्रत्यक्ष–पद्धति का सूत्रापात पश्चिमी देशों में हुआ। प्रत्यक्ष विधि का अर्थ होता है–

- वस्तुओं को प्रत्यक्ष रूप में दिखाना।
- वस्तुओं व जीव जन्तुओं का चित्र अथवा प्रतिमान दिखाना
- क्रियाओं को करके दिखाना।
- भारत में 1908 में प्रत्यक्ष पद्धति अपनाई गई।

- बंगाल में श्री टिपिंग को, बम्बई में श्री फ्रेजर को और मद्रास में श्री येट्स को इस पद्धति को सर्वप्रथम अपनाने का श्रेय दिया जाता है।

प्रत्यक्ष विधि के गुणः–

- इस पद्धति में वार्तालाप, मौखिक कार्य एवं बोलने के अभ्यास पर बल दिया जाता है।
- यह विधि मनोवैज्ञानिक है।
- इस पद्धति में अन्य भाषा को स्वतन्त्र एवं पृथक भाषा के रूप में पढ़ाया जाता है।
- इस पद्धति में मातृभाषा के प्रयोग को सीमित कर दिया जाता है और सम्पूर्ण वाक्य को इकाई माना जाता है।
- सीमित शब्द–ज्ञान का प्रयोग करके शब्दावली को नियन्त्रित कर दिया जाता है।
- यह विधि भाषा कौशल का विकास करती है। इसमें लेखन के सभी कौशल पैदा नहीं हो पाते।
- प्रत्यक्ष पद्धति में अन्य भाषा के अध्ययन के समय अन्य भाषा में ही आदेश, निर्देश दिये जाते हैं (अंग्रेजी पढ़ाते समय अंग्रेजी, हिन्दी पढ़ाते समय हिन्दी इस प्रकार) और उसी में विचारों की अभिव्यक्ति की जाती है।
- इस पद्धति का मुख्य सिद्धांत यह है कि जिस प्रकार बालक श्रवण एवं अनुकरण द्वारा मातृभाषा सीख लेता है, उसी प्रकार वह दूसरी भाषा भी सीख सकता है।
- इस पद्धति से व्याकरण–अनुवाद प्रणाली के दोष अपने आप दूर हो जाते हैं।
- व्याकरण की सहायता इस पद्धति में नहीं ली जाती है।
- भाषा तत्वों पर जोर नहीं देती।
- दूसरी भाषा सीखने में उसी भाषा का माध्यम अपनाया जाता है, अतः अनुवाद की आवश्यकता नहीं पड़ती है।
- भाषा के दो आधारभूत कौशलों–सुनना और बोलना को सीखने का पर्याप्त अवसर मिलता है तथा उस भाषा की ध्वनियों एवं उच्चारणों से बालक सहज ही परिचित हो जाता है।
- यह विधि भाषा शिक्षण के मूल सिद्धान्तों के अनुकूल है।
- अनुभूति और अभिव्यक्ति में सीधा सम्बन्ध होना चाहिए, बीच में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।
- इस विधि में हिन्दी भाषा के शुद्ध उच्चारण का अभ्यास करवाया जाता है, अतः इससे अभिव्यक्ति क्षमता का विकास होता है।
- इसमें बच्चे को अ से अनार, ई से ईख, चार्ट में चित्र के साथ या प्रत्यक्ष दिखाकर इन अक्षरों को लिखकर दिया जाता है।

प्रत्यक्ष विधि के दोषः–

- प्रत्यक्ष विधि से सीमित शब्दावली का ही ज्ञान दिया जा सकता है।
- अनेक शब्द ऐसे होते हैं जिनकी प्रत्यक्ष व्याख्या नहीं हो सकती, जैसे सर्वनाम व विशेषण शब्दों का ज्ञान करवाना संभव नहीं है।
- यह कमजोर बालकों के लिए अधिक उपयोगी नहीं है।
- इस विधि में कठिनाई यह है कि कुछ संज्ञा शब्दों–पुस्तक, कलम, गेंद, कागज, कुर्सी, मेज, लड़का, लड़की आदि का ज्ञान तो करा दिया जाता है पर भाववाचक शब्दों एवं विशेषणों एवं संरचनात्मक शब्दों के ज्ञान में बड़ी कठिनाई होती है।
- इस विधि में वाक्य–संरचनाओं का पर्याप्त ज्ञान नहीं कराया जा सकता। प्रश्नोत्तर विधि द्वारा कुछ वाक्यों की संरचना तो बता दी जाती है जैसे, यह क्या है ? वह क्या है ? पर सभी प्रकार की वाक्य–संरचनाओं का ज्ञान कराना बहुत कठिन है।
- सुनने और बोलने पर अधिक बल होने से वाचन और लेखन गौण हो जाते हैं।

- इसके द्वारा केवल संज्ञा या उन शब्दों का ज्ञान दिया जा सकता है जिनके चित्र आदि बन सकें या जिन चीजों को कक्षा तक लाया जा सके।
- प्रत्यक्ष पद्धति से पढ़ाने में लेखन तथा व्याकरण के ज्ञान का अभाव रहता है।

4. व्याकरण–अनुवाद विधि

प्रमुख विशेषताएं

- संस्कृत में डॉ. रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर द्वारा सर्वप्रथम अपनाये जाने के कारण भण्डारकर विधि भी कहते हैं।
- इस पद्धति द्वारा अनुमान, तुलना तथा निरीक्षण का अभ्यास होता है।
- द्वितीय भाषा शिक्षण की यह सर्वाधिक प्रचलित एवं प्राचीनतम पद्धति है।
- माध्यमिक स्तर पर द्वितीय भाषा शिक्षिण हेतु सर्वाधिक प्रयोग की जाने वाली विधि है। पहले बालक को व्याकरण के नियम कंठस्थ करवाये जाते है, तत्पश्चात् द्वितीय भाषा का अनुवाद मातृ–भाषा में सीखाया जाता है। अनुवाद की यह प्रक्रिया व्युत्क्रम में की जाती है।
- यह विधि अध्यापन केन्द्रित विधि है।
- प्राचीन भाषाओं–संस्कृत, अरबी, ग्रीक, लैटिन आदि का शिक्षण इसी प्रणाली से होता आया है। भाषा कौशल की दक्षता प्रदान करना इस विधि का प्रमुख उद्देश्य है।
- यह अनुवाद के सिद्धान्त पर कार्य करती है।
- द्वितीय भाषाओं की ''स्वयं शिक्षण मालाएँ'' इस विधि पर आधारित होती है।
- इस विधि में अन्य भाषा का शब्दशः अनुवाद किया जाता है और अन्य भाषा के व्याकरण की मातृभाषा के व्याकरण के साथ तुलना करके शुद्ध भाषा सीखी जाती है।
- भाषा–कौशलों की दक्षता का उद्देश्य हो तथा द्वितीय भाषा के ढाँचों (ध्वनियों, शब्दों, पदों एवं वाक्यों के ढाँचे) का ज्ञान कराना। बालक को इन ढाँचों का प्रयोग आना चाहिए न कि नियम।
- मातृभाषा के अवतरणों का द्वितीय भाषा में अनुवाद कराया जाता है और इसके अभ्यास द्वारा द्वितीय भाषा के शब्दों एवं वाक्य रचनाओं का ज्ञान प्रदान किया जाता है।
- इस पद्धति से ज्ञात से अज्ञात, सरल से कठिन आदि सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है।
- द्वितीय भाषा के शब्दों एवं वाक्य रचनाओं का ज्ञान आना चाहिए न कि नियम तथा मातृभाषा के अवतरणों का द्वितीय भाषा में अनुवाद कराया जाता है।
- अनुवाद करते समय शिक्षार्थी मातृभाषा के शब्दों के आधार पर द्वितीय भाषा के शब्दों को रखने का प्रयत्न करता है।
- इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम द्वितीय भाषा के व्याकरण का ज्ञान करवाया जाता है। इसमें शब्द, वाक्य संरचना, संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, कारक आदि का ज्ञान दिया जाता है। संस्कृत पढ़ाने में भी इसी व्याकरण विधि का अनुसरण किया जाता है।
- इस विधि में बोलने की अपेक्षा लिखने और पढ़ने पर तथा भाषा की अपेक्षा भाषा के तत्त्वों के ज्ञान पर अधिक बल दिया जाता है।

दोष :–

- सिर्फ उच्च कक्षाओं के लिए उपयोगी है।
- व्याकरण एवं अनुवाद पद्धति द्वितीय भाषा–शिक्षण की वैज्ञानिक पद्धति नहीं है।

- भाषा–शिक्षण का ज्यादातर समय व्याकरण–ज्ञान में समाप्त हो जाता है।
- यह विधि अमनोवैज्ञानिक है।
- इस पद्धति में व्याकरण ही अध्ययन का मुख्य विषय बन जाता है।
- इस पद्धति में मौखिक अभ्यास की अवहेलना होती है।
- इस विधि में छात्र–अध्यापक के बीच अन्तःक्रिया नहीं होती।
- 18 वीं सदी में जान बेसडो ने व्याकरण पद्धति का विरोध किया और कहा कि भाषा–शिक्षण में पहले बोलने और पढ़ने पर बल देना चाहिए, व्याकरण पर बाद में।
- इसमें उच्चारणाभ्यास मौखिक कार्य, रसानुभूति आदि उपेक्षित रह जाते हैं।
- व्याकरण के नियमों को रटने पर अधिक बल होता है और भाषा का व्यावहारिक पक्ष उपेक्षित रहता है।
- अन्य भाषा के प्रत्येक शब्द का मातृभाषा में अनुवाद करना हानिकारक एवं कठिन होता है। अतः इस विधि को अच्छा नहीं समझा जाता है।

5. द्विभाषी पद्धति

- इस पद्धति में बालक को मातृभाषा व विदेशी भाषा दोनों को संयुक्त रूप से प्रयोग में लेते हुए विदेशी भाषा को सिखाया जाता है। द्विभाषी विधि की यह मान्यता है कि जब बालक मातृभाषा सीखता है तो प्रत्यक्षीकरण साथ–साथ करता चलता है। जैसे माँ ने कहा – 'लो मीठा आम खाओ' बालक ने आम खाया उसको पता चला कि आम यह वस्तु होती है और आम का यह स्वाद क्या होता है।
- इस प्रक्रिया से बालक के मस्तिष्क में आम का प्रत्यय स्पष्ट हो गया। अब जब विदेशी भाषा का ज्ञान कराया जाएगा और उसमें '**Mango**' को स्पष्ट करना है तो बालक से कहा जाएगा। **Take Mango** बालक नहीं समझेगा फिर कहेंगे **Take** आम, यहाँ चूँकि बालक का मातृभाषा में आम शब्द स्पष्ट है। अतः वह आम ले लेगा। इस प्रकार द्विभाषा विधि में प्रत्येक शब्द को अनुवादित नहीं किया जाता है।
- इसमें पूरे–पूरे वाक्य में केवल उन्हीं शब्दों को मातृभाषा में अनुवादित किया जाता है। जिसकों बालक मातृभाषा में जानते है।
- द्विभाषी विधि को प्रायः विदेशी भाषा पढ़ाने के काम में लेते है। अँग्रेजी, फ्रेन्च, रूसी आदि ऐसी भाषाएँ हैं, जो पूर्णतः विदेशी है। अतः इनके शिक्षण में द्विभाषी विधि का प्रयोग किया जाता है।

6. सैनिक विधि

उपनामः संघटनापरक विधि/अनौपचारिक विधि/आर्मी मैथड/अनुकरण परिस्मरण, श्रव्य–भाष्य विधि

इसे श्रव्य–भाष्य विधि भी कहते हैं। सैनिक विधि का सूत्रपात अमेरिका देश से माना जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध (1945 ई.) के आरम्भ होने के कुछ समय पश्चात जब अमेरिका को भी उसमें सम्मिलित होना पड़ा तो अपने सैनिकों को अन्य देशों में भेजने के लिए उनको तैयार किया जाने लगा। उन दिनों विश्वविद्यालयों में भाषा, भाषा विज्ञान, शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान करने वाले पेज, बोज, सपीटर, ब्लूमफील्ड आदि विद्वानों ने 'सेना विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम' आरम्भ किया।

- भाषा–संघटन पर बल देना और मौखिक कथनों द्वारा अभ्यास विधि
- इस विधि के अन्तर्गत व्याकरण का सैद्धांतिक ज्ञान नहीं करवाया जाता है।

- इसे सेना विधि कहा जाता था क्योंकि द्वितीय महायुद्ध के समय अमेरिकन सैनिकों को द्वितीय भाषा पर बल देने हेतु इस विधि का प्रयोग किया गया था।
- वार्तालाप पर अधिक तथा लेखन और वाचन पर कम बल दिया जाता है।
- भाषा विज्ञान का आधार होने के कारण इसे भाषा वैज्ञानिक विधि भी कहते हैं।
- इस विधि में शिक्षक या आदर्श वक्ता स्वयं अथवा टेप द्वारा पूरा संवाद या पाठ विद्यार्थी को सुनाता है और विद्यार्थी उच्चारण एवं संवाद का पूरा–पूरा अनुकरण करते हुए उसे कंठस्थ कर लेता है। इस कारण इसे अनुकरण–परिस्मरण विधि भी कहते हैं।
- भाषा क्षमता विकसित होती है। इसका उद्देश्य बालकों को वास्तविक परिस्थिति में भाषा प्रयोग कर सकने की योग्यता प्रदान करना।
- इस विधि में भाषा के सैद्धातिक ज्ञान की जगह भाषिक कौशलों का अभ्यास कराया जाता है।
- भाषा सीखने की दृष्टि से इन अभ्यासों का विशेष स्थान है। इससे बालकों में भाषा के प्रयोग की क्षमता विकसित होती है।
- काल्पनिक परिस्थितियों में अधिगम
- प्रत्यक्ष विधि के दोषों का निवारण बहुत कुछ संघटनापरक विधि द्वारा किया गया है।
- भाषा विशेषज्ञ या टेपरिकॉर्डर का शिक्षण में प्रयोग

7. ध्वन्यात्मक शिक्षण विधि

- उपनाम– ध्वनि साम्य विधि, फोनेटिक मैथड विधि, संश्लेषणात्मक विधि
- इस विधि के प्रतिपादक माइकल सेमर है।
- इस विधि कि अन्तर्गत ध्वनि की समानता रखने वाले वर्णों को एक साथ सिखाया जाता है। जैसे– धर्म, कर्म, चर्म, मर्म, शर्म एवं श्रम, क्रम, भ्रम आदि।
- समान ध्वनि वाले वर्णों को एक साथ वाचन करवाना ही ध्वन्यात्मक विधि के नाम से जानी जाती है।
  इसमें केवल ध्वनियों पर अधिक बल दिया जाता है।
- इस पद्धति के अनुसार राष्ट्र भाषा या किसी भी नवीन भाषा का सुनना तथा उसका अनुकरण करके बोलना सबसे अधिक आवश्यक है। किसी भी भाषा की ध्वनियों पर अधिकार प्राप्त कर लेने से उसका बोलना तथा लिखना सरल हो जाता है।
- ये विधि संश्लेषणात्मक कहलाई जाती है क्योंकि इनमें अक्षर से आरम्भ करते हैं और अक्षरों के जोड़ या संश्लेषण से शब्द बनाते हैं।
- इस विधि में टेप रिकॉर्डर द्वारा शुद्ध उच्चारण को रिकॉर्ड करके उच्चारण सम्बन्धी कठिनाइओं को दूर कर सकते है।
- इस विधि में स्वर–व्यंजनों का ज्ञान कराया जाता है।
- छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए सबसे पहले ध्वन्यात्मक विधि पढ़ाई जाती है। बच्चों को स्वर, वर्ण आदि का ज्ञान कराया जाता है।
- भाषा सीखने में सहयोग करती है।
- वाचन कौशल का विकास करती हैं।

- इस विधि में शब्दों, वाक्य खण्डों और वाक्यों के अर्थ पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना उनकी ध्वनियों पर ।
- इस विधि का एक सबसे बडा गुण यह है कि ध्वनियों का खूब अभ्यास हो जाता है और उनका उच्चारण स्थिर हो जाता है।

दोष–

- इस विधि से ध्वनि पढ़ सकते हैं लेकिन भाषा नही सीख सकते (भाषा के सभी अंग नहीं पढ़ाया जा सकता है।)
- अध्यापक व बाल केन्द्रित विधि है।

8. दूरस्थ शिक्षण विधि

दूरस्थ शिक्षण का अर्थ है– घर बैठे शिक्षण प्राप्त करना।

इस विधि में अध्यापक बालक के सम्मुख ना होकर एक पाठ्यक्रम के रूप में होता है। बालक द्वारा सीखे हुये ज्ञान का मूल्यांकन अध्यापक द्वारा किया जाता है। बालक अपने घर पर ही रहकर स्वाध्याय द्वारा विषय वस्तु का ज्ञान प्राप्त करता है। निरौपचारिक शिक्षा की पद्धति है।

सम्पूर्ण विषय में जहाँ जटिलता पाई जाती है, उसको दूर करने एवं जिज्ञासाओं को शान्त करने के लिए अध्यापक–छात्र सम्पर्क कार्यक्रम रखा जाता है।

परिभाषाएँ –

पीटर्स के अनुसार, "दूरस्थ शिक्षा ज्ञान, कौशल तथा अभिवृद्धि प्रदान करने की एक नवीन तथा उभरती हुई, विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली शैक्षिक संरचना है, जो दूरगामी शिक्षा के रूप में लोगों को शिक्षा देने में समर्थ है।"

फिलिप कौम्बस के अनुसार, " पहले से स्थापित औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में बाहर चलने वाली सुसंगठित शैक्षिक प्रणाली को दूरस्थ शिक्षा कहा जाता है। यह एक स्वतंत्र प्रणाली के रूप में अथवा किसी बड़ी प्रणाली के अंग के रूप में सीखने वालों के एक निश्चित समूह को निश्चित शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मदद देती है।"

वर्तमान शैक्षिक परिवेश में दूरस्थ शिक्षा एक ऐसा सम्प्रत्यय है जिसमें शिक्षण में स्थान व दूरी की बाधाऐं दूर कर शिक्षार्थी को घर बैठे सीखने के अवसर उपलब्ध कराए जाते हैं। निर्मित व औपचारिक शिक्षा से वंचित लोगों को शिक्षा का अवसर देने का यह अभिनव प्रयोग था। दूरस्थ शिक्षा मूलतः शिक्षा के सार्वजनीकरण का एक महत्त्वपूर्ण उपाय है।

दूरस्थ शिक्षण विधि के उपनाम– पत्राचार शिक्षा, बहु माध्यम शिक्षा, गृह अध्ययन, स्वतंत्र अध्ययन, मुक्त अधिगम, टेली एजूकेशन, नवाचार विधि।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली की विशेषताएँः–

- औपचारिक शिक्षा से वंचित बालको हेतु उपयोगी साबित हुई है।
- यह प्रणाली छात्रों की आवश्कताओं, स्तर एवं उनके दैनिक कार्यों से जुडी रहती है।
- यह एक लचीली विधि है।

- यह विधि छात्रों के सुनिश्चित एवं विशिष्ट समूह के लिये पूर्व निर्धारित तथा विशिष्ट उद्देश्यों के लिये प्रदान करती है।
- यह विधि स्वगत अधिगम के सिद्धान्त पर कार्य करती है।
- छात्रों को इस विधि द्वारा अपनी इच्छानुसार समय लगाकर, उसकी अपनी योग्यता तथा गति के अनुसार पढ़ने के अवसर मिलते हैं।
- दूरस्थ शिक्षा, शिक्षण–अधिगम की एक सुसंगठित तथा सुव्यवस्थित प्रणाली है।
- यह विधि कामकाजी या सेवारत लोगों के लिए अत्यंत उपयोगी है।
- इसमें आमने–सामने बैठकर पढ़ने–पढ़ाने का बन्धन नहीं होता।
- दूरस्थ शिक्षा की तकनीकों का प्रयोग सभी आयु वर्ग के लोगों को शिक्षित करने के लिये अनेक प्रकार के व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक शास्त्रों से सम्बन्धित पाठयक्रमों के शिक्षण हेतु किया जाता है।
- दूरस्थ शिक्षा–स्व अनुदेश की प्रणाली पर आधारित होती है।
- दूरस्थ शिक्षा से ज्ञानात्मक, भावात्मक तथा मनोवैज्ञानिक तीनों प्रकार के उदेश्यों की प्राप्ति संभव होती है।
- इसमें शैक्षिक तकनीकी के विभिन्न माध्यमों–मुद्रित तथा अमुद्रित का प्रयोग किया जाता है।
- अनुदेशन सामग्री के अध्ययन का उत्तरदायित्व छात्रों पर अधिक होता है।

यह शिक्षा को देश के दूर–दूर तक के स्थानों तक पहुँचाने का प्रयास करती हैं।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के उद्देश्यः–

- ज्ञान व अधिगम को विभिन्न विधाओं के प्रयोग द्वारा छात्रों तक पहुँचाने का सफल प्रयास करना।
- ऐसे लोगों के लिये शिक्षा के अवसर पुनः प्रदान करना, जो किन्हीं कारणों से अपने जीवन में शिक्षित होने के अवसर खो चुके हैं।
- दूरस्थ शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य है–देश के सुदूर कोने में स्थित विभिन्न स्थानों पर पढ़ने वालों के द्वार–द्वार तक शिक्षा पहुँचाना।
- छात्रों के स्तर, आवश्कताओं, योग्यताओं, क्षमताओं तथा आयु के अनुसार अधिगम सामग्री तैयार करना तथा निर्दिष्ट विधियों द्वारा छात्रों तक पहुँचाने का सफल प्रयास करना।
- संविधान में वर्णित 'सभी को शिक्षा के समान अवसर' सिद्धान्त को बढ़ावा देना।

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता एवं महत्त्व :–

- दूरस्थ शिक्षा ऐसे लोगों के लिये वरदान है जो अपनी शिक्षा को आगे जारी रखने के लिये अन्यत्र जाने में पूर्णतय असमर्थ हैं।
- दूरस्थ शिक्षा, बहुमाध्यमीय उपागम का प्रयोग करती है–फलस्वरूप छात्रों की अधिगम प्रक्रिया को अधिक बल मिलता है।
- दूरस्थ शिक्षा, शैक्षिक तथा व्यावसायिक अवसरों की समानता प्रदान करने वाला एक सशक्त माधयम है।
- दूरस्थ शिक्षा ऐसे लोगों के लिये भी महत्त्वपूर्ण है जिन्हें ज्ञान के उन्नयन के लिये कुछ अतिरिक्त शैक्षिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
- समृद्ध समाजों के लोगों के लिये दूरस्थ शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण उपकरण है।
- दूरस्थ शिक्षा, निरक्षर किसानों, मजदूरों, गृहणियों तथा विकंलाग व्यक्तियों आदि के लिये भी महत्त्वपूर्ण है जो औपचारिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ रहे हैं।
- यह छात्र–केन्द्रित या व्यक्ति–केन्द्रित व्यवहार है, अतः इसके अन्तर्गत छात्रों के स्तरों के अनुरूप बेहतर अधिगम सामग्री उपलब्ध कराई जा सकती है।

- दूरस्थ शिक्षा छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति विकसित करती है

9. वाचन विधि

- 'वाचन' शब्द संस्कृत की 'वच्' धातु से बना है, जिसका अर्थ होता है– बोलना अर्थात् बालक को पढ़ना सिखाना ही वाचन शिक्षण के अन्तर्गत आता है।
- 'ध्वनि' वाचन शिक्षण की विशिष्टता मानी जाती है।
- संस्कृत भाषा में वाचन के लिए ऊँचे स्वर में पढ़ना या पढ़कर सुनाना है। शिक्षा के क्षेत्र में वाचन से तात्पर्य अर्थ ग्रहण करने से है।
- इस विधि में सर्वप्रथम अध्यापक विषयवस्तु का वाचन करता है जिसे आदर्शवाचन कहते है तत्पश्चात् छात्र उसका अनुकरण करता है।
- शिक्षक शुद्ध उच्चारण, ध्वनि का आरोह–अवरोह, भावानुकूल स्वर की उच्चता और मन्दता, प्रसंग के अनुसार वाणी की ओजस्विता, मधुरता, विराम चिह्नों का ध्यान, ललित भाव–भंगिमा, वाणी की तीव्रता (श्रोता–समूह की संख्या के आधार पर) आदि का ध्यान रखकर पाठ का आदर्श वाचन करता है।
- आदर्श वाचन में शुद्ध उच्चारण अत्यन्त आवश्यक है। आदर्श वाचन का प्रयोजन है छात्रों को गद्यांश का सामान्य प्रवाह तथा उद्देश्य समझाना, उच्चारण का आदर्श प्रस्तुत करना तत्पश्चात् कक्षा के अच्छे छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन कराया जाता है शेष छात्र मौन वाचन में मग्न रहते है।
- अनुकरण वाचन के समय शिक्षक को उतना ही सजग और सतर्क रहना पड़ता है, जितना अन्य सोपानों में। उसे छात्रों के पाठ वाचन करते समय की गई उच्चारण की त्रुटियों का निवारण करते रहना चाहिए।

वाचन के उद्देश्य –

1. भाव ठीक–ठीक समझने की क्षमता उत्पन्न करना।
2. शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कराना।
3. अभिव्यक्ति की क्षमता।
4. उनमें पढ़ते हुए लिपिबद्ध विचारों के अर्थ ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना।
5. त्वरित गति से पढ़ने का अभ्यास करना।
6. छात्र कहानियों, कविताओं, नाटकों, उपन्यासों तथा समाचार पत्रों के पढ़ने में रूचि लें।

वाचन का महत्त्व –

डॉ. धरनाथ चतुर्वेदी – "वाचन एक कला है यह ज्ञानार्जन की कुंजी है। वाचन शक्ति ठीक रहने पर ही मनुष्य जटिल से जटिल विषय पढ़कर समझ सकता है तथा पढ़े हुए अंश का सार खोलकर या लिखकर व्यक्त कर सकता है। सुवाचन के बिना न तो कोई अच्छा वक्ता बन सकता हैं और न ही लेखक। वाचन मृत्यु पर्यन्त मनुष्य का साथी है। आप अकेले घर में बैठे हैं रेल में यात्रा पर रहे हैं अथवा बीमार पड़े है, ऐसे समय में आप पुस्तक उठाइये और उसके पठन का मजा चखिए।"

वाचन शिक्षण का क्रम –

छात्रों को वाचन की पूर्ण अवस्था तक पहुँचाने के लिए मनोवैज्ञानिक रूप में वाचन के विभिन्न स्तरों पर निपुण बनाया जाये।

वाचन शिक्षण की निम्नलिखित तीन अवस्थायें है –

1. पुस्तको के पढ़ने के लिए रूचि उत्पन्न करना।

2. शब्द, वाक्यांशों व वाक्यों का बोध करना।

3. गम्भीर की प्रवृत्ति उत्पन्न करना, विश्लेषण एवं निष्कर्ष की भी क्षमता उत्पन्न करना।

वाचन शिक्षण की विधियाँ –

क. संश्लेषण विधि ख. विश्लेषण विधि

क. संश्लेषण विधि –

(1) अक्षर बोध विधि (2) ध्वनि साम्य विधि

(1) अक्षर बोध विधि –

- अक्षर बोध विधि प्राचीन विधि है।
- इसमें वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, तब उन्हें शब्द बनाने सिखाये जाते हैं और शब्दों को जोङकर वाक्य रचना की ओर बढ़ते हैं। यह विधि भाषा की इकाई अक्षरा अथवा वर्ण को मानती है।

अक्षर बोध विधि के दोष –

1. बालक की उन अक्षरों को सीखने में रूचि नहीं होती।
2. इससे छात्रों में एक–एक कर पढ़ने की आदत पङ जाती है।
3. बालकों का अधिकांश समय वर्णमाला के रटने में ही चला जाता है।

(2) ध्वनि साम्य विधि –

- इस विधि में भी बालक अक्षर से शब्द की ओर बढ़ता है।
- बालकों को अक्षर ज्ञान के साथ–साथ ध्वनि साम्य वाले शब्दों का भी ज्ञान कराया जाता है।
- यह विधि प्रारम्भिक कक्षा में ही ठीक रहती है। यह वाचन में निपुणता लाने के लिए अधिक उपयोगी है।
- इस विधि में शब्दों व वाक्यांशों की ध्वनियों पर ध्यान दिया जाता है।
- निष्कर्षत इन दोनों पद्धतियों को ध्वन्यात्मक विधि भी कहते हैं। इन पद्धतियों द्वारा बालकों में अक्षर ज्ञान की रूचि उत्पन्न करने के लिये अब चित्रों का प्रयोग किया जाता है।

ख. विश्लेषण विधि –

(1) देखो और कहो विधि –

- देखो और कहो विधि में शब्दों का परिचय कराया जाता है।
- चित्रों को माध्यम बनाया जाता है। यह पद्धति बङी ही आकर्षक और रोचक है।
- अनेक बार उस चित्र और शब्दों को देखने के बाद उस शब्द का चित्र बालक के मानस–पटल पर गहरा अंकित हो जाता है, जब–जब वह उस वस्तु या चित्र का स्मरण करता है, तब–तब उसे वह शब्द–चित्र भी याद आ जाता है।
- इस शब्द–चित्र में कई वर्ण होते हैं, जैसे–श,ल,ग तथा म। इन सभी वर्णों से वह भली–भाँति परिचित हो जाता है, उदाहरण के लिये बालक को आम का चित्र दिखाकरऔर उन्हें आम पढ़ाना सिखाकर आ और म अक्षरों का ज्ञान कराया जायेगा।
- देखने और व्यवहार में यह विधि अत्यन्त रोचक ज्ञात होती है, परन्तु इसके प्रयोग से बालकों को शब्द–ज्ञान सीमित ही रहता है।

(2) वाक्य शिक्षण विधि –

- यह विधि 'देखो और कहो' विधि का ही परिवर्तित व उन्नत रूप है। इसमें भाषा का ज्ञान वाक्य से प्रारम्भ किया जाता है यह मनोवैज्ञानिक विधि है। बालक को अपने मनोभावों के अनुसार पढ़ना सिखाने के लिए वाक्य–शिक्षण विधि के आधार पर पढ़ाया जाना चाहिए।

  इस विधि में वाक्य श्यामपट्ट या चार्ट पर लिखकर अथवा चित्र दिखाकर उसके नीचे उपयुक्त, संगत व सार्थक वाक्य लिखकर छात्रों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। छात्र चित्र देखते हैं और अध्यापक के उच्चारण के अनुसार फिर स्वयं वाक्य उच्चारण करते हैं, इस प्रकार याद करते है।

(3) अनुकरण विधि –

- अध्यापक शब्द का उच्चारण करता जाता है तथा बालक अनुसरण करते रहते हैं। यह एक प्रकार से देखो और कहो विधि का रूपान्तर है इसे हम 'सुनो और कहो' विधि कह सकते है।
- अंग्रेजी भाषा के शिक्षण में अधिक लाभदायक है।

(4) कहानी विधि –

- कहानी विधि को हम वाक्य शिक्षण विधि का दूसरा रूप कह सकते हैं।
- कहानी विधि छोटे बालको के लिए विशेष रूप से लाभदायक होती है।
- मैन्जिल कहते हैं – 'छोटे बालक कहानी सुनना सबसे अधिक पसन्द करते हैं अतः कहानी विधि सर्वोत्तम रहती है।'

(5) भाषा शिक्षण यंत्र विधि – अध्यापक के स्तर पर ग्रामोफोन रिकार्ड का प्रयोग शुद्ध उच्चारण के लिए किया जाता है।

- बालक व्यवस्थित उच्चारण की शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं, उनमें एकाग्रता आ जाती हैं।

(6) सामूहिक पठन विधि –

- समस्त कक्षा सामूहिक रूप से अनुकरण करती रहती है।
- अक्षर नाम से भली भाँति परिचित हो जाएँ।

(7) कविता विधि –

- गद्य में जो स्थान 'कहानी विधा' का है, पद्य में वही स्थान कविता विधि का है। वाक्य कविता की पंक्तियों के रूप में होती है।

10. पर्यवेक्षित अध्ययन विधि

प्रस्तुतकर्ता– मोरीसन (अमेरिका)

उपनाम : निरीक्षित, निरीक्षण, परिवीक्षित, समाजीकृत अभिव्यक्ति विधि, पारिपाक विधि, उपचारी विधि, पर्यवेक्षण आदि नामों से जाना जाता है।

निर्देशित स्वाध्याय विधि को मोरीसन ने प्रस्तुत किया। यह विधि एक ऐसी विधि है जिसके अन्तर्गत छात्र स्वयं अध्ययन करते हैं किसी समस्या का समाधान करते हैं और शिक्षक इसमें एक पथ–प्रदर्शक होता है। वह केवल छात्रों का मार्गदर्शन करता है। इस विधि का प्रयोग उन विषयों के लिए अधिक उपयोगी है जिन विषय को छात्र स्वयं करने में सक्षम होते हैं।

पर्यवेक्षित अध्ययन की एक विधि है जो कुशल शिक्षक के निरीक्षण और निर्देशन में सम्पन्न होती है। इस विधि में बालक स्वाध्यायरत रहते हैं और यदि उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई प्रतीत होती है, जिसका समाधान वे स्वयं नहीं कर सकते तो कुशल शिक्षक सहायता और उचित निर्देशन द्वारा बालकों की समस्याओं को सुलझाने का पूर्णतया प्रयत्न करता है।

परिभाषाएँ : –

- पी.एन. अवस्थी– " निरीक्षित अध्ययन पद का अर्थ स्वतः स्पष्ट है। इसका तात्पर्य यह है कि जब विद्यार्थी कार्यरत हो तो शिक्षक द्वारा उसका निरीक्षण कर इस प्रक्रिया में कार्य प्रदत्त कर दिया जाता है तथा वे कार्य में मस्त रहते है और कठिनाई अनुभव होती है शिक्षक की सहायता से मार्गदर्शत लेते है व कार्य करते हैं।"
- क्लार्स एवं स्टार– " निरीक्षित अध्ययन विधि छात्रों को निर्देशन में अध्ययन करने तथा अध्यापक को निरीक्षण एवं निर्देशित करने के अवसर प्रदान करती है।"
- बॉसिंग "कुशल शिक्षक के निर्देशन से उच्चस्तरीय प्रदत्त कार्य को पूर्ण करने के लिए कुशल अध्ययन की तकनीकियों को समझने और उन पर अधिकार प्राप्त करने का नाम ही पर्यवेक्षित अध्ययन है।"
- क्लॉसमियर– "निरीक्षण अध्ययन कालांश से अध्यापक द्वारा दिये गये कार्य छात्रों द्वारा प्रारंभ की गई क्रियाओं तथा विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत योजनाओं पर आधारित होते हैं। अध्यापक प्रत्येक छात्र की सहायता करता है।"
- रस्क के अनुसार– "निर्देशित अध्ययन का अर्थ है– अध्यापक द्वारा विद्यार्थियों की उन क्रियाओं को निर्देशित करना जो मुख्य रूप से किसी समस्या समाधान प्राप्ति या योग्यताओं की प्राप्ति से संबंधित है। और जिनके लिए शिक्षार्थी आयोजन के लिए प्रयास करता है।"
- बाईनिंग व बाईनिंग "मेज या दराजो के चारों ओर बैठे हुए कार्यरत समूह या कक्षा के शिष्यों का शिक्षक द्वारा पर्यवेक्षिण करना ही पर्यवेक्षित अध्ययन है।"
- मैक्सवेल तथा किल्जर– "बालकों को ऐसी प्रयोगशालाओं संबंधी क्रियाओं का शांत रूप में किया गया अध्ययन ही परिवीक्षित अध्ययन है जिसमें अध्यापक का काम केवल मार्ग दर्शन होता है।"
- "छात्रों के शान्तिपूर्वक अध्ययन एवं प्रयोगशालीय क्रियाओं के बहिर्पक्षीय दर्शन तथा प्रभावपूर्ण दिशा–निर्देशन का नाम ही पर्यवेक्षित अध्ययन है।"

इसके प्रयोग के विविध रूप हैं, जो इस प्रकार हैं–

(अ) सम्मेलन योजना– (**Conference Plan**) इस विधि में कुछ सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं और बालकों की व्यक्तिगत कठिनाइयों का निवारण पूरे सम्मेलन में किये जाते है। यह सम्मेलन एक विचार गोष्ठी के रूप में सम्पन्न होती है।

(ब) विशिष्ट अध्यापक योजना – इसके विधि में एक विशिष्ट अध्यापक बालकों के दोषों, उनकी भ्रान्त धारणाओं एवं कठिनाइयों को दूर करता है।

(स) विभाजित कालांश योजना – इस विधि के अनुसार एक ही कालांश के अन्तर्गत दो अध्यापक बालकों के कार्यों का निरीक्षण करते हैं।

(द) द्वि–कालांश योजना – इस विधि के अनुसार एक ही विषय सामग्री के अध्ययन के लिये दो कालांश दिये जाते हैं। प्रथम कालांश में निश्चित विषय को पढ़ाने का आदेश देकर उससे सम्बन्धित भूमिका प्रस्तुत की जाती है और दूसरे

कालांश में उनकी अध्ययन विधियों का निरीक्षण किया जाता है मेबेल ई. सिम्पसन ने इस विधि का प्रयोग बड़े ही सराहनीय ढंग से किया है। उन्होंने 80 मिनट के दो संयुक्त कालांशों को अधोलिखित रूप में विभक्त किया था –

समीक्षा	25 मिनट
गृह कार्य	25 मिनट
शारीरिक व्यायाम	5 मिनट
समर्पित कार्यों का अध्ययन	35 मिनट
योग :	90 मिनट

(य) सामयिक योजना – इस विधि में शिक्षक किसी कार्य को करने का आदेश देकर कुछ निश्चित अवधि के बाद बालकों की प्रगति का परीक्षण करता है। इस प्रकार साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा मासिक रूप में वह परीक्षण एवं निर्देशन का कार्य करता है। तीसरी योजना में प्रत्येक विषय के लिए प्रति सप्ताह एक घंटे निरीक्षित अध्ययन के लिए निर्धारित कर दिया जाता है।

पर्यवेक्षित अध्ययन की विशेषताएँ :–

- इस पद्धति में व्यक्तिगत संलग्नता के सिद्धान्त का अनुकरण किया जाता है।
- पर्यवेक्षित अध्ययन स्वाध्याय की एक विधि है।
- पर्यवेक्षित अध्ययन छात्रों को आत्मनिर्भर और कुशल बनाने का एक प्रयत्न है।
- मंद बुद्धि के छात्र इस पद्धति से काफी लाभ उठा सकते हैं।
- व्यक्तिगत संलग्नता अनुशासनहीनता की समस्या को स्वतः ही दूर कर देती है।
- इस पद्धति के व्यक्तिगत विभिन्नता पर आधारित होने के कारण प्रत्येक छात्र को अपनी क्षमता तथा योग्यता के अनुसार अध्ययन करने का अवसर प्राप्त होता है।
- इस पद्धति के अन्तर्गत शिक्षक एवं छात्रों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित होते हैं।
- इस पद्धति में सीखने का महान गुण है।
- पर्यवेक्षित अध्ययन में कुशल निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।
- पर्यवेक्षित अध्ययन वह शिक्षण विधि है, जिसके द्वारा छात्र अध्यापक के कुशल निरीक्षण तथा निर्देशन में स्वाध्याय द्वारा विषय को समझने और उसमें कुशलता प्राप्त करने का प्रयत्न करता है।
- पर्यवेक्षित अध्ययन विधि के उपागम के चार सोपान होते हैं।
- इस विधि में अध्यापक व विद्यार्थी दोनों सक्रिय रहते हैं।

पर्यवेक्षित अध्ययन के उद्देश्य :–

- वैयक्तिकता पर आधारित शिक्षा
- आवश्यकतानुसार निर्देशन
- गृहकार्य की समस्या–समाधान (गृहकार्य कालांश में ही करा दिया जाता है)
- छात्रों को स्वाध्यायशील बनाना

मुनरो ने छात्रों के स्वतन्त्र एवं व्यक्तिगत अध्ययन के लिए 9 नियम निर्धारित किये हैं

पर्यवेक्षित अध्ययन विधि के दोष :–

- इसमें व्यय अत्यधिक होता है तथा कष्ट साध्य भी है।
- इस विधि से तीव्र बुद्धिवाले बालक लाभान्वित नहीं हो पाते यहाँ तक कि कभी–कभी तो यह उनके लिये बाधा बन जाती है।
- यह विधि केवल कुशल शिक्षक द्वारा ही सफलतापूर्वक अपनायी जा सकती है।
- छोटी कक्षाओं के लिए उपयोगी नहीं।

11. आगमन विधि

आगमन विधि :–

आगमन विधि में पहले उदाहरण प्रस्तुत कर उदाहरणों द्वारा नियमों का निर्धारण किया जाता है। अर्थात छात्रों के समक्ष पहले बहूत से उदाहरणों, तत्वों एवं वस्तुओं का प्रदर्शन कर नियमों का निर्धारण करना ही आगमन विधि है। यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है।

- आगमन का अर्थ है प्रत्यक्ष उदाहरणों, अनुभवों तथा प्रयोगों से निष्कर्ष निकालना।
- एक ऐसी शिक्षण प्रणाली जिसमें उदाहरणों की सहायता से सामान्य नियम का निर्धारण किया जाता है, आगमन शिक्षण–विधि कहलाती है।
- आगमन विधि में अनुभवों, प्रयोगों तथा उदाहरणों का विस्तृत अध्ययन करके नियम बनाये जाते हैं।
- इस विधि में तर्क करते हुए 'विशिष्ट से सामान्य की ओर' तथा 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' आगे बढ़ते हैं।
- इस विधि द्वारा शिक्षण करते समय शिक्षक बालकों के समक्ष कुछ विशेष परिस्थितियाँ एवं उदाहरण प्रस्तुत करता है। इन उदाहरणों के आधार पर बालक तार्किक ढंग से विचार–विमर्श करते हुए किसी विशेष सिद्धान्त, नियम अथवा सूत्र पर पहुँचते हैं।
- नियमों सूत्रों आदि का प्रतिपादन करते समय इस विधि में बालक अपने अनुभवों, मानसिक शक्तियों तथा पूर्व–ज्ञान का प्रयोग करता हैं।

परिभाषा :–

जॉयसी – ''आगमन विशेष दृष्टान्तों की सहायता से सामान्य नियमों को विधिपूर्वक प्राप्त करने की क्रिया है।

यंग – इस विधि में बालक विभिन्न स्थूल तथ्यों के आधार पर अपनी मानसिक शक्ति का प्रंयोग करते हुए स्वयं किसी विशेष सिद्धान्त, नियम अथवा सूत्र तक पहुँचता है।

लैण्डल – ''जब बालकों के समक्ष अनेक तथ्यों, उदाहरणों एवं वस्तुओं को प्रस्तुत किया जाता है, तत्पश्चात् बालक स्वयं ही निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करते है, तब वह विधि आगमन विधि कहलाती है।''

- आगमन विधि में बालक स्वयं तथ्यों, प्रयोगों एवं उदाहरणों की सहायता से किसी सूत्र या नियम विशेष का ज्ञान प्राप्त करता है तथा पूर्णरूप से सक्रिय रहता है अतः इस विधि द्वारा अर्जित किया गया ज्ञान ठोस एवं अधिक स्थाई होता हैं।
- इसमें बालक की विभिन्न मानसिक शक्तियों का विकास भी होता है।

विशिष्ट से सामान्य की ओर	स्थूल से सूक्ष्म की ओर
मूर्त से अमूर्त की ओर	ज्ञात से अज्ञात की ओर
उदाहरण से नियम की ओर	प्रत्यक्ष से प्रमाण की ओर

आगमन विधि द्वारा शिक्षण करते समय मुख्यरूप से चार सोपानों का प्रयोग किया जाता है –

1. विशिष्ट उदाहरणों का प्रस्तुतीकरण
2. नियमीकरण या सामान्यीकरण करना
3. निरीक्षण करना
4. परीक्षण एवं सत्यापन करना

आगमन विधि के गुण एवं विशेषताएँ :–

- इससे तर्क,विचार और निणर्यशक्ति का विकास होता है।
- यह मनोवैज्ञानिक विधि है जिससे आत्म–निर्भरता व आत्म–विश्वास उत्पन्न होता है क्योंकि छात्र स्वयं नियम की खोज करते हैं।
- संदर्भ के अनुसार व्याकरण पढाई जाती है।
- व्याकरण अध्ययन के लिए यह सुलभ विधि है।
- इस विधि की सहायता से विभिन्न नियमों, सम्बन्धों, सूत्रों तथा *नवीन सिद्धान्तों* आदि का प्रतिपादन करने में सहायता मिलती है।
- यह छोटी कक्षाओं के लिए सर्वाधिक उपयोगी एवं उपयुक्त विधि है।
- इस विधि में बालक स्वयं उदाहरण निरीक्षण और परीक्षण के द्वारा ज्ञान अर्जित करते हैं। इसलिए इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान अधिक स्थाई होता हैं।
- आगमन विधि द्वारा बालकों की मानसिक शक्तियों यथा–आलोचनात्मक, निरीक्षण, तर्क विचार एवं निणर्य शक्ति का विकास होता है। यह शिक्षण की एक श्रेष्ठ विधि हैं।
- यह एक वैज्ञानिक विधि है क्योंकि इस विधि द्वारा अर्जित ज्ञान प्रत्यक्ष तथ्यों पर आधारित होता है।
- इसमें बालक सदैव नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए उत्सुक बना रहता हैं।

- इसमें नियम की खोज बालक स्वयं करते हैं जिससे उनमें आत्म–विश्वास की वृद्धि होती है। इसमें बालक अधिक क्रियाशील रहते हैं।
- इस विधि के द्वारा बालक को नियम, सूत्रों का निर्धारण एवं सामान्यीकरण की प्रक्रिया का ज्ञान हो जाता है।
- यह विधि मनोवैज्ञानिक है क्योंकि इसमें मनोहिन्दी के विभिन्न महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का अनुकरण किया जाता है।
- इस विधि द्वारा बालकों को स्वयं कार्य करने की प्रेरणा मिलती है जिससे उनमें आत्म निरीक्षण तथा आत्म विश्वास की वृद्धि होती है।
- इसके द्वारा बालकों में उत्सुकता एवं रुचि बनी रहती है।
- इसके द्वारा बालक उदाहरणों की सहायता से स्वयं ज्ञान प्राप्त करते हैं जिसके कारण वे थकान का अनुभव नहीं करते तथा नवीन ज्ञान की प्राप्ति में सक्रिय बने रहते हैं।
- इसमें बालक की रुचि का विकास होता है जिससे विषय सरल बन जाता हैं।
- यह बालक की सूक्ष्म बुद्धि एवं सूझ की वृद्धि के लिए उपयोगी है।
- इस विधि द्वारा आसानी से नियम का निर्माण किया जा सकता है जिससे छात्रों मे जाँच करने व पुष्टि करने की आदत पङती है।
- इस विधि में छात्र अधिक चैतन्यता प्रदर्शित करता हैं।
- इसमें बालक स्वयं ही अपने परिश्रम के आधार पर सामान्य नियमों की ओर गति करते हैं।

आगमन विधि की सीमाएँ एवं दोष :–

- इस विधि द्वारा बालकों में समस्या समाधान की योग्यता एवं क्षमता का विकास संभव नहीं है।
- नियमीकरण अथवा सामान्यीकरण के लिए प्रत्यक्ष उदाहरणों का चयन एवं प्रस्तुतीकरण शिक्षक एवं शिक्षार्थी के लिए आसान काम नहीं है। अप्रशिक्षित शिक्षक इस प्रणाली का उचित रूप से प्रयोग नहीं कर सकता।
- इस विधि की गति अत्यन्त धीमी है जिससे इसके द्वारा ज्ञान प्राप्ति में समय और परिश्रम अधिक लगता हैं।
- इस विधि का प्रयोग करने के लिए पर्याप्त बुद्धि, सूझ–बूझ एवं परिश्रम की आवश्यकता होती है। अतः सभी स्तर के बालकों के लिए इसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करना आसान नहीं है।
- यह विधि निम्न कक्षाओं के लिये ही उपयोगी है क्योंकि उच्च कक्षाओं में पाठ्यक्रम इतना विस्तृत होता है कि इस विधि द्वारा सम्पूर्ण ज्ञान सीमित समय में प्राप्त करना संभव नहीं है।
- इस विधि द्वारा प्राप्त ज्ञान क्रमबद्ध नहीं होता है।
- इस विधि द्वारा प्राप्त परिणाम पूर्णतया सत्य नहीं होते, उनकी सत्यता इस बात पर निर्भर करती हैं कि वह परिणाम कितने उदाहरणों पर आधारित है, क्योंकि कोई भी परिणाम जितने अधिक विशिष्ट उदाहरणों पर आधारित होता है उसकी विश्वसनीयता एवं सत्यता उतनी ही अधिक होती है।

हिन्दी साहित्य चैनल

12. निगमन विधि

निगमन विधि में पहले नियम बता दिया जाता है, बाद में उदाहरणों द्वारा नियम को पुष्ट किया जाता है। इस विधि में सिद्धान्त या परिभाषा को पहले बता दिया जाता है, बाद में उस सिद्धान्त का प्रयोग बताया जाता हैं। दूसरे शब्दों में , निगमन विधि में सामान्य से विशेष की ओर चलते हैं। आगमन विधि के लिये निगमन विधि पूरक विधि है। इन दोनों विधियों के बीच कोई विरोध नहीं है।

निगमन विधि का आधार दर्शनशास्त्र है। यह धारणा है कि सत्य शाश्वत व अपरिवर्तनीय होता हैं। इसी धारणा के अनुसार निगमन विधि भी नियमों की शाश्वतता व अपरिवर्तनीयता को सिद्ध करने का प्रयास करती है।

- निगमन विधि आगमन विधि के बिल्कुल विपरीत है। निगमन विधि में हम एक परिभाषा/सामान्य नियम या सूत्र को सत्य मान लेते हैं और उसे विशिष्ट उदाहरणों या परिस्थितियों में लागू करते हैं।
- नियम यथार्थ तथ्यों की व्याख्या करने के साधन होते हैं।
- इस विधि में निगमन तर्क का प्रयोग किया जाता है।
- निगमन विधि में अभिधारणाओं, आधारभूत तत्वों तथा स्वयंसिद्धियों की सहायता ली जाती हैं।
- निगमन विधि का प्रयोग उच्च कक्षाओं के शिक्षण में अधिक किया जाता है।

निगमन विधि के दो रूप हैं –

1.सूत्र प्रणाली

2. पाठ्यपुस्तक प्रणाली

परिभाषा – लैंडन के अनुसार, 'निगमन विधि द्वारा शिक्षण में पहले परिभाषा या नियम स्पष्ट किया जाता है तत्पश्चात् उसके अर्थ की व्याख्या की जाती हैं और अंत में तथ्यों का प्रयोग करके उसे पूर्णरूप से स्पष्ट किया जाता है।'

निगमन विधि के चरण:–

1. परिभाषा – शिक्षक छात्रों के समक्ष कोई परिभाषा प्रस्तुत करता है।

2. उदाहरण – शिक्षक परिभाषा को सत्य सिद्ध करने के लिए उदाहरण का प्रयोग करता है।

3. निष्कर्ष – शिक्षक उदाहरण के द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है।

4. परीक्षण – छात्र उदाहरण की सहायता से किसी निष्कर्ष का परीक्षण करते हैं।

कार्य विधि:–

- निगमन विधि में सूक्ष्म से स्थूल की ओर, सामान्य से विशिष्ट की ओर तथा प्रमाण से प्रत्यक्ष की ओर या नियम से उदाहरण की ओर अग्रसर होते हैं।
- निगमन विधि में बालकों के सम्मुख सूत्रों, नियमों तथा सम्बन्धों आदि को प्रत्यक्ष रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
- बालक बताये गये नियमों, सिद्धान्तों एवं सूत्रों को याद करके कण्ठस्थ कर लेते हैं।

अज्ञात से ज्ञात की ओर	सूक्ष्म से स्थूल की ओर
अमूर्त से मूर्त की ओर	सामान्य से विशेष की ओर
नियम से उदाहरण की ओर	प्रमाण से प्रत्यक्ष की ओर

निगमन विधि के गुण एवं विशेषताएँ:–

हिन्दी साहित्य

- यह अमनोवैज्ञानिक विधि है।
- जब समयाभाव हो तो उन परिस्थितियों में इस विधि का उपयोग करना चाहिए।
- जब बालक आगमन विधि के नियम और परिभाषाओं, की खोज कर लेता है तो उसका पुष्टिकरण निगमन विधि के द्वारा बालकों को याद करा दिया जाता है।
- इस विधि का प्रयोग करने पर शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों को कम परिश्रम करना पड़ता है।
- इस विधि द्वारा कम समय में अधिक ज्ञान प्रदान किया जा सकता है।
- इस विधि में साधारण नियमों की खोज में समय नष्ट नहीं होता।
- निगमन विधि का प्रयोग अधिक आयु के बालकों के लिए किया जाता है।
- नवीन समस्याओं का समाधान इस विधि द्वारा किया जा सकता है।
- इस विधि द्वारा क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त होता है। यह विधि ज्ञानार्जन की गति को तीव्र करती है।
- इस विधि द्वारा नियमों, सिद्धान्तों एवं सूत्रों की सत्यता की जाँच आसानी से की जा सकती है।
- इस विधि के प्रयोग से बालक अभ्यास कार्य शीघ्रता तथा आसानी से कर सकते हैं।
- यह विधि उपयुक्त तथा संक्षिप्त होती है क्योंकि प्रश्न का हल एक सूत्र के आधार पर होता हैं
- यह विधि संक्षिप्त होने के साथ–साथ व्यावहारिक भी है।
- समय के अभाव की दशा में इस विधि का प्रयोग किया जाता है।
- इस विधि के प्रयोग से कार्य अत्यन्त सरल एवं सुविधाजनक होता जाता हैं।
- निगमन विधि द्वारा बालकों की स्मरण शक्ति विकसित होती है, क्योंकि इस विधि का प्रयोग करते समय बालकों को अनेक सूत्र याद करने पड़ते हैं।

निगमन विधि की सीमाएँ या दोष :–

- इसके द्वारा प्राप्त ज्ञान अस्पष्ट एवं अस्थायी होता है।
- इस विधि में भिन्न–भिन्न प्रकार के प्रश्नों के लिए अनेक सूत्र याद करने होते हैं जो कठिन कार्य है। इसमें क्रियाशीलता का सिद्धान्त लागू नहीं होता।
- यह विधि बालक की तर्क, विचार व निर्णय शक्ति के विकास में सहायक नहीं है।
- यह विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के विपरीत है क्योंकि यह स्मृति केन्द्रित विधि है।
- यह विधि खोज करने की अपेक्षा रटने की प्रवृत्ति पर अधिक बल देती है। अतः छात्र की मानसिक शक्ति का विकास नहीं होता हैं
- हिन्दी प्रारम्भ करने वालों के लिए यह विधि उपयुक्त नहीं है।
- यह विधि छोटी कक्षाओं के लिए उपयोगी नहीं है, क्योंकि छोटी कक्षाओं के बालकों के लिए विभिन्न सूत्रों, नियमों आदि को समझना बहुत कठिन होता हैं।
- इस विधि के प्रयोग से अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया अरुचिकर तथा नीरस बनी रहती हैं।
- स्वतन्त्रतापूर्वक इस विधि का प्रयोग सम्भव नहीं हो सकता।
- इस विधि द्वारा बालकों को नवीन ज्ञान अर्जित करने के अवसर नहीं मिलते हैं।
- छात्र में आत्मनिर्भरता एवं आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं होता हैं।
- इस विधि में बालक यन्त्रवत् कार्य करते हैं क्योंकि उन्हें यह पता नहीं रहता है कि वे अमुक कार्य इस प्रकार ही क्यों कर रहे हैं।
- इस विधि में तर्क, चिन्तन एवं अन्वेषण जैसी शक्तियों को विकसित करने का अवसर नहीं मिलता है।
- इसके द्वारा अर्जित ज्ञान स्थायी नहीं होता है।

आगमन निगमन विधि के विस्तृत रूप को विश्लेषण पद्धति कहते हैं। इसके चार पद इस प्रकार हैं –

1. उदाहरण 2. विश्लेषण 3. सामान्यीकरण 4. परीक्षण।

13. अभिक्रमित अनुदेशन शिक्षण विधि

- अभिक्रमित अध्ययन विधि को अभिक्रमित अनुदेशन अथवा 'अभिक्रमित अधिगम' भी कहते हैं। यह शिक्षण की आधुनिक तकनीक कहलाती है। यद्यपि इसका प्रयोग प्राचीनकाल में सुकरात ने अपनी प्रश्नोत्तर प्रणाली में किया था। इस विधि के प्रणेता वी.एफ. स्किनर हैं जिन्होंने डॉ. प्रैसी के सहयोग से शिक्षा जगत को यह महान देन प्रदान की थी। उन्होंने अधिगम के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में एक शिक्षण पद्धति के रूप में प्रयुक्त किया है। यह सिद्धान्त है कि यदि बालक को उसके प्रश्न के हल का मूल्यांकन तुरन्त बता दिया जाये तो उसके सीखने में वृद्धि के अवसर बढ़ जाते हैं। स्किनर ने एक ऐसे शैक्षिक यंत्र का आविष्कार (सन् 1950) किया जो बालक को उसके प्रश्न का हल 'सही' अथवा 'गलत' तुरन्त बता देता है। इस आविष्कार से इस बात की पुष्टि हो गई है कि बालक को परिणाम तुरन्त मिलने से वे अच्छी तरह सीख जाते हैं।
- अभिक्रमित अनुदेशन का अर्थ – यह विधि ज्ञान की विषयवस्तु को छोटे–छोटे पदों में विभाजित कर क्रमबद्ध रूप से तार्किक ढंग से इस प्रकार नियोजित करती है कि विद्यार्थी रूचिपूर्ण स्वगति से स्वाध्याय में अग्रसर होता जाता है। इसमें बालक को तुरन्त परिणाम ज्ञात होने से प्रतिपुष्टि द्वारा पुनर्बलन मिलता है जिससे वह आगे अधिगम करने हेतु प्रेरित होता है।
- प्रो. रूश के अनुसार, ''अधिगम में एक विशेष प्रकार का निर्देशन जो विद्यार्थी को नयी सामग्री सिखाता है और अपने अधिगम को जाँचने का अवसर देता है, अभिक्रमित अनुदेशन या कभी–कभी स्वचालित अनुदेशन कहा जाता है।''
- एन. एस. मावी के अनुसार, ''अभिक्रमित अनुदेशन प्राणवान अनुदेशनात्मक प्रक्रिया को स्व अधिगम अथवा स्व–अनुदेशन में परिवर्तित करने की वह तकनीक है जिसमें विषय–वस्तु को छोटी–छोटी शृंखलाओं में विभाजित किया जाता है। अधिगम कर्त्ता को इन्हें पढ़कर सही अथवा गलत कैसी भी अनुक्रिया करनी होती है। अपनी गलत अनुक्रिया को ठीक करना होता है तथा सही अनुक्रिया करनी होती है। अपनी गलत अनुक्रिया को ठीक करना होता है तथा सही अनुक्रिया की प्रतिपुष्टि करनी होती है।''
- फ्रैड स्टोफेल के अनुसार, ''ज्ञान के छोटे–छोटे घटकों की तार्किक क्रम में व्यवस्था की अभिक्रिया है तथा इस प्रकार की सम्पूर्ण अभिक्रमित अधिगम कहलाती है।''
- सुसान माइकल के अनुसार, ''अभिक्रमित अधिगम वैयक्तिक अनुदेशन की एक ऐसी विधि है जिसमें विद्यार्थी स्वयं को संलग्र रखते हुए अपनी गति के अनुसार अग्रसर होता है एवं उसे परिणामों की जानकारी भी तुरन्त मिल जाती है।''
- डेल एजर के अनुसार, ''अभिक्रमित अनुदेशन एक क्रमबद्ध पद से पद तक स्वशिक्षण कार्यक्रम है जो पूर्व निर्धारित व्यवहार के अधिगम को सुनिश्चित करता है।''
- अभिक्रमित अधिगम की आवश्यकता –

सामान्य कक्षा शिक्षण में सामान्यतयाः यह कठिनाई आती है कि बालकों को व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर इस प्रकार शिक्षा कैसे प्रदान की जाये कि वे स्वगति से सुविधा पूर्वक अधिगम कर सकें। अनेक प्रयास शिक्षक द्वारा इस दिशा में किये जाते हैं लेकिन इस जटिलता को कुछ कम तो किया जा सकता है पूर्ण निवारण नहीं। अभिक्रमित अधिगम शिक्षा की एक ऐसी विधि है जो बालक को स्वगति से सीखने का अवसर प्रदान करती है। इससे व्यक्तिगत भिन्नता के कारण अध्यापन में आने वाली जटिलताएँ स्वतः ही कम हो जाती हैं।

- अभिक्रमित अधिगम के सिद्धान्त –

1. छोटे सोपानों का सिद्धान्त – इसका अर्थ है जिस विषय–वस्तु को विद्यार्थी के समक्ष प्रस्तुत किया जाना हो उसे छोटे–छोटे पदों में विभाजित कर दिया जाये क्योंकि यह माना जाता है कि यदि सीखने वाले को सामग्री खण्डों में प्रस्तुत की जाये तो वह उसे अच्छी तरह से सीख सकता है।

2. सक्रिय सहयोग का सिद्धान्त –

- प्रत्येक इकाई का छात्र द्वारा किसी न किसी रूप में अनिवार्यतः उत्तर दिया जाना।

- मनोवैज्ञानिक खोजों से यह सिद्ध हो चुका है कि अध्येता भलीभाँति तभी सिखता है, जब उसे उस कार्य में सक्रिय रूप से भाग लेने का अवसर दिया जाये।
- परम्परागत शिक्षण पद्धति में पूछे गये एक प्रश्न का उत्तर प्रायः एक ही छात्र देता है, शेष छात्रों का सोचा हुआ उत्तर उन के मस्तिष्क में ही जड़वत् रह जाता है। वे अध्यापक सक्रिय छात्र के सही उत्तर से अपने सोचे हुए उत्तर का मन ही मन मिलान भले ही कर लें किन्तु शिक्षण में इस प्रकार समस्त छात्रों का सक्रिय सहयोग नहीं मिल पाता। कक्षा में यदि सभी प्रश्नों का उत्तर सभी छात्र सक्रिय रूप से दें तो अधिगम अधिक प्रभावपूर्ण रहेगा।
- अभिक्रमित अधिगम की एक प्रमुख विशेषता यह है कि प्रत्येक छात्र प्रत्येक प्रश्न समस्या का उत्तर देते हुए अधिगम के प्रत्येक स्तर पर सक्रिय सहयोग देता है।

3. तुरन्त आश्वासन का सिद्धान्त –

- उत्तरित सोपान के सही/गलत उत्तर की जानकारी देते हुए छात्र को अनुप्रेरण के द्वारा पुनर्बलन प्रदान करना।
- मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि छात्र तब अच्छा सीखता है जब वह अपने उत्तर के प्रति आश्वस्त हो जो छात्र अपने उत्तर के बारे में अधिक देर तक प्रतीक्षारत रहता है, वह उस छात्र की अपेक्षा अधिक नहीं सीख पाता जिसे अपने उत्तर परिणाम की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।

4. स्वतः गतिक्रम का सिद्धान्त –

- अनुस्तरित सोपानों में क्रमशः एक–एक पर अधिकार करने के पश्चात् ही दूसरे सोपान पर पहुँचना। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि कुछ लोग दूसरों की अपेक्षा जल्दी सीखते हैं, जबकि कुछ लोग धीरे सीख पाते हैं। यदि कक्षा में अध्यापन की गति काफी तेज या काफी धीमी है, तो हर एक छात्र अपनी गति के कारण अध्ययन में पूरा ध्यान नहीं लगा पाता।
- अभिक्रमित अधिगम में प्रत्येक छात्र अपनी इच्छा/शक्ति के अनुसार तीव्र या मंद गति से चलने के लिए स्वतंत्र होता है। वह अभिक्रम के प्रत्येक प्रश्न/समस्या पर अपनी आवश्यकता या इच्छा अथवा शक्ति के अनुसार जितना चाहे उतना समय लगा सकता है।

5. छात्र–परीक्षण का सिद्धान्त –

- पाठ्य–सामग्री की इकाइयों/घटकों का आकार, संख्या तथा मात्र केन्द्रित (बुद्धि स्तर, अभिरुचि, शारीरिक क्षमता के अनुरूप) रहना। छात्रों के सीखने की प्रक्रिया/गतिविधि के आधार पर किसी अभिक्रम का सुधार/संशोधन छात्र–परीक्षण के सिद्धान्त पर आधारित है।
- अभिक्रमिक अनुदेशन शिक्षण विधि के प्रकार – अभिक्रमित अनुदेशन का प्रसार सभी विकसित देशों में तीव्र गति से हुआ। इस हेतु अनेक प्रकार के अभिक्रमों की रचना की गई जिसमें मुख्य निम्नलिखित है –
  1. रेखीय या बाह्य अभिक्रम।
  2. शाखीय या आन्तरिक अभिक्रम।
  3. अवरोही अभिक्रम या अभिक्रमित अधिगम।

1. रेखीय या बाह्य अभिक्रम – इसका प्रतिपादनक्रियावस्तु अनुबन्ध सिद्धान्त के नाम से 1954 में बी.एफ. स्कीनर ने किया। यह पुनर्बलन एवं प्रतिपुष्टि के सिद्धान्त पर आधारित है।

यह अधिगम रेखीय है जिसमें क्रमिक तथा सीधी व्यवस्था होती है जो तारतम्य रूप से प्रकट की जाती है और उस समय तक चलती रहती है जब तक कि लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती अर्थात् छात्र सीख नहीं जाता है। प्रश्न और उत्तर के माध्यम से यह विद्या विद्यार्थियों को नयी सामग्री, नया अनुभव प्रदान करती है। इसमें पद के पश्चात् प्रश्न, प्रश्नोत्तर, पुनर्बलन तथा दूसरा पद इस प्रकार क्रमानुसार अधिगम सीखने की अवस्था तक पहुँच जाता है। इसमें विद्यार्थी स्वयं अनुक्रिया करता है।

रेखीय अभिक्रमित अनुदेशन–सामग्री की विशेषतायें –

(1) बिना शिक्षक की उपस्थिति व्यक्ति अधिगम प्राप्त करता है।

(2) छोटे पदों द्वारा सीखने की प्रक्रिया अधिक अच्छी होती है।

(3) विषय–वस्तु पूर्ण रूपेण निर्देशित एवं क्रमबद्धता होती है।

(4) छात्र अपनी क्षमता के अनुसार प्रगति करता है।

(5) सही होने की दशा में पुनर्बलन प्राप्त करता है।

(6) छात्र पाठ सोपानों के अनुसार सीखता रहता है। इसमें सीखे बिना अगले सोपान में नहीं प्रवेश करता है।

2. शाखीय या आन्तरिक अभिक्रम –

- शाखीय अभिक्रम का विकास 1954 में नार्मन ए. क्राउजर ने किया। इस विधि को क्राउजर अभिक्रमित अध्ययन विधि भी कहते है। यह प्रस्तुतीकरण की तकनीक है। नार्मन ए.क्राउजर अमेरिकन मनोवैज्ञानिक के रूप में इस सिद्धान्त के बल पर चर्चित हुआ। इन्होंने इसका आविष्कार लङाकू विमानों की खराबी में सुधार करने के लिए कारीगरों को प्रशिक्षित करने के लिए किया। इसका आधार परम्परागत अनुवर्ग विधि है। इसमें शिक्षार्थी की कमजोरियाँ, कठिनाइयाँ व त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए विभिन्न पद दिये जाते है। एक पद पढ़ लेने के बाद शिक्षार्थी को बहुविकल्पी प्रश्न पूछे जाते है। सही उत्तर आने पर शिक्षार्थी अगले पद की ओर बढ़ता है। यदि उत्तर सही नहीं है तो शिक्षार्थी को उपचारात्मक निर्देश दिये जाते है। इस हेतु उसे पूर्व पठित पद को पढ़ना पङता है। इससे प्रतिभाशाली शिक्षार्थी आगे निकल जाते है। इसमें विद्यार्थी अपनी सूझ–बूझ से अनुक्रिया का चुनाव करने के लिए स्वतंत्र होता है, अतः इसे आन्तरिक अभिक्रम भी कहा जाता है। इसमें सही अनुक्रिया जानने के लिए बहु–विकल्पी प्रश्नों का सहारा लिया जाता है। इसमें सही अनुक्रिया जानने के लिए बहु–विकल्पी प्रश्नों का सहारा लिया जाता हैं, अतः इसे बहुरूपिया अभिक्रम भी कहते है।
  शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन में बहुत–सी सामग्री बिखेर दी जाती है, उसमें से छात्र अपनी योग्यातनुसार चुनाव करके ज्ञान धारण करता है। अतः रेखीय अभिक्रम अनुदेशन की अपेक्षा वह शाखीय अभिक्रमित अनुदेशन अधिक प्रभावकारी होता है।

रेखीय अभिक्रम एवं शाखीय अभिक्रम में अन्तर

रेखीय अभिक्रम	शाखीय अभिक्रम
1. क्रमानुसार होता है।	1. बिखरा हुआ होता है
2. रेखीय अभिक्रम में छात्र को प्रत्येक प्रोग्राम/प्रश्न समस्या से होकर गुजरना पङता है।	2. शाखीय अभिक्रम में यह अनिवार्यता नहीं है।
3. इसमें छात्र क्रमबद्ध चलता हुआ जब तक सीख नहीं लेता है तब तकअगले अध्याय या सोपान पर नहीं जा सकता। पूर्व ज्ञान मजबूत होना चाहिए। आवश्यकतानुसार किसी एक को चुनने का निर्देश दिया जाता है।	3. शाखीय अभिक्रम की मान्यता है कि विभिन्न प्रश्नों/समस्याओं का उत्तर देते हुए आगे बढ़े। इस अभिक्रम में किसी–किसी सोपान के आगे दो शाखाओं में सोपान क्रम होते है। छात्रों को अपनी आवश्यकता होने पर किसी छात्र को पीछे के सोपान पर भी जाना पङ जाता है।

3. अवरोही अभिक्रम या अभिक्रमित अधिगम –

- इसका विकास थॉमस एफ. गिल्बर्ट ने 1962 में अमेरिका में गणित विषय के प्रत्ययों के लिए किया। यह बी. एफ. स्किनर के सिद्धान्त सक्रिय अनुबंध अनुक्रिया पर आधारित है।

- अवरोही अभिक्रम जटिल व्यवहार–समूह विश्लेषण एवं पुनर्निर्माण के लिए पुर्नबलन के सिद्धान्तों का व्यवस्थित प्रयोग है जो विषय–वस्तु के पूर्ण अधिकार का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें विषय को छोटे–छोटे पद में प्रस्तुत किया जाता है व प्रदर्शन, अनुबोध और अनुक्रिया के आधार पर विषयवस्तु पर स्वामित्व पद प्राप्त किया जाता है।

अभिक्रमित अधिगम के सोपान –

अभिक्रमित अधिगम का अध्ययन निम्न सोपानों के द्वारा सम्पन्न होता है।

1. प्रकरण का चयन करना।
2. उद्देश्यों का प्रतिपादन करना तथा व्यवहारिक रूप में लिखना।
3. पाठ्यवस्तु का विश्लेषण करना तथा अनुदेशन क्रम का निर्धारण का।
4. मानदण्ड परीक्षा का निर्माण करना।
5. अनुदेशन के प्रारूप का निर्धारण करना।
6. अभिक्रमित अनुदेशन के पदों को लिखना।
7. समूह पर जाँचना अथवा पदों की जाँच करना।
8. मूल्यांकन करना।

अभिक्रमित अनुदेशन विधि –

1. छात्र को परिणामों की तुरन्त जानकारी मिल जाती है।
2. पुर्नबलन पर बल।
3. भारत में अभिक्रमित शिक्षण का प्रारम्भ सन् 1963 में हुआ।
4. रचना शिक्षण में उत्तम विधि है।
5. जन्मदाता अमेरिकी मनोवैज्ञानिक बी. एफ.स्किनर है।
6. प्राचीनकाल में प्रश्नोत्तर विधि में सुकरात ने प्रयोग किया।
7. बालक को उसके प्रश्न का हल तुरन्त बता दिया जाये तो सीखने में वृद्धि के अवसर बढ़ जाते है।

14. रसास्वादन विधि

उपनामः उपसंहार विधि

'रसास्वादन' शब्द दो शब्दों के योग से बना है। 'रस+आस्वादन।' 'रस' का अर्थ होता है, आनन्द तथा आस्वादन का अर्थ होता है– ग्रहण करना अर्थात् जब कोई रचना उचित स्वराघात, उपयुक्त गति, भावभंगिमा के साथ प्रस्तुत की जाती है तब उसे रसास्वादन विधि कहते है।

इसका मुख्य उद्देश्य किसी कविता या पदों में दिए गए शब्दों में निहित रसों की पहचान करना जैसे– करुण रस, सौंदर्य रस, वीर रस तथा हास्य रस आदि तथा रसों का आनन्द कराने की दृष्टि से कविता का शिक्षण करवाना है, अर्थात् इस विधि का मुख्य उद्देश्य कविता में स्थित, रस का आनंद या रसानुभूति करवाना है। यह विधि सभी स्तर के विद्यार्थियों के लिए अनुकूल है।

विशेषताएँः

- इस विधि में कविता के मूल भाव को छोड़कर केवल शब्दों के रस को ग्रहण किया जाता है।
- कविता का पाठन कराने हेतु यह विधि प्रयुक्त होती हैं।
- इस विधि में अध्यापक का लक्ष्य कविता का अर्थ बतलाना न होकर कविता का आनन्द लेने में छात्रों को समर्थ बनाना हैं।

- कविता–पाठन का प्रमुख उद्देश्य रसानुभूति कराना होता है। अतः काव्य का रसास्वादन कराने के लिए जो भी आवश्यक हो करना चाहिए।
- इस विधि से छात्रों में भावनात्मक प्रवृति का विकास होता है।
- यह एक प्रकार की उपसंहार विधि है अर्थात कविता की सामान्य रूप से व्याख्या कर देने के पश्चात् उसकी रसानुभूति कराना ही इसका उद्देश्य है।
- रसानुभूति के लिए कविता का भावपूर्ण ढंग से अनेक बार पाठ करना और मार्मिक स्थानों का विवेचन करते हुए काव्यानंद की अनुभूति कराना अपेक्षित है।
- इस विधि का सर्वाधिक उपयोग प्राथमिक स्तर पर होता है।
- कविता–शिक्षा में मौन वाचन कराना उचित नहीं, क्योंकि कविता मन में पढ़ने की वस्तु नहीं है। उसको भावानुसार सस्वर पढ़ना ही श्रेयस्कार है।
- इस विधि छात्र को यति–गति तथा लय–ताल का ज्ञान होता है।
- कविता के भावों को हृदयंगम करके कवि के साथ तादात्म्य स्थापित करना और भाव–विभोर होकर कविता का आनन्द लेना इस विधि की सार्थकता है।

15.सूत्र विधि

- सूत्र–विधि संस्कृत से आई है और इसका प्रचलन हमारे देश में बहुत पहले से है। इस विधि के अनुसार व्याकरण के भिन्न–भिन्न नियमों को सूत्र के रूप में परिणत कर लिया जाता है। विद्यार्थियों को यह सूत्र कण्ठस्थ करा दिए जाते है और बाद में अनेक उदाहरणों द्वारा इन सूत्रों को स्पष्ट कर दिया जाता है।
- पुरातन काल की कई पोथियों को हम देखते है कि वेद की संहिताओं, उपनिषदों, श्रीमद्भागवत तथा गीता की शिक्षाओं को छोटे–छोटे सूत्रों के रूप में बड़े मार्मिक ढंग से संग्रहीत किया गया है। इन सूत्रों की व्याख्या करने के लिए बड़ी–बड़ी रचनाएँ रची गई है। इस विधि का प्रयोग हम विद्यार्थियों की रचना शिक्षण में भी कर सकते हैं।
- सूत्र उन्हीं विषयों से सम्बन्धित होने चाहिए, जो विद्यार्थियों की पहुँच के भीतर हैं।
- इस विधि में बालकों को व्याकरण सम्बन्धी नियम पहले बता दिये जाते हैं, तत्पश्चात उन नियमों का अभ्यास कराया जाता है;

  उदाहरण के लिए – यदि हमें संज्ञा का ज्ञान देना है तो पहले बालकों को संज्ञा की परिभाषा – "किसी व्यक्ति, स्थान या वस्तु के नाम को संज्ञा कहते हैं।" बतायेंगे। उसके बाद कुछ वाक्य लिखकर या बोलकर विद्यार्थियों द्वारा उनमें से संज्ञा शब्दों को छटवाएँगे।

- पाठ्य–पुस्तक प्रणाली और सूत्र–प्रणाली दोनों सिद्धान्त से आरम्भ होती हैं और नियम से उदाहरण की ओर जाती है।
- पाणिनी की अष्टाध्यायी सूत्रों में है।
- सर्वप्रसिद्ध 'सिद्धान्त–कौमुदी' भी सूत्र रूप में पढ़ाई जाती है।
- इस विधि को निगमन विधि भी कहते हैं।

गुण :–

- संस्कृत की सूत्र प्रणाली का अनुकरण करते हुए हिन्दी विद्वानों ने भी हिन्दी व्याकरण की रचना सूत्र रूप में की है।
- यह प्रणाली पाठ्य–पुस्तक प्रणाली का रूपांतर है।

- इस प्रणाली के अनुसार व्याकरण के नियम सूत्रों के रूप में रटा दिए जाते हैं, फिर उनके उदाहरण देकर उनकी उपयोगिता बता दी जाती है।
- संस्कृत व्याकरण पढ़ाने के लिए प्राचीन काल से अब तक यही प्रणाली प्रयुक्त होती है।
- व्याकरण के आचार्य व्याकरण के नियमों को संक्षिप्त शब्दों में व्यक्त करते हैं। ऐसे कतिपय अक्षरों से ही एक सूत्र बनता है।
- सूत्र प्रणाली पाठ्य–पुस्तक से इतनी ही भिन्न है कि जहाँ पाठ्य–पुस्तक प्रणाली में लम्बे–चौड़े नियम याद कराए जाते हैं, वहां सूत्र प्रणाली से संक्षिप्त सूत्र याद कराए जाते हैं।

दोष :–

- नीरस और शुष्क होने के अतिरिक्त यह बच्चों पर अनावश्यक दबाव डालती है।
- इसमें बिना समझे रटना पड़ता है, जो अवैज्ञानिक है।
- उदाहरणों के अज्ञान में यह सब निरर्थक हो जाते हैं, क्योंकि प्रयोग और अभ्यास के अभाव में व्याकरण सीखना असम्भव है। संस्कृत शिक्षा में भी इस प्रणाली का अब परिहार हो रहा है।
- रुचि और ध्यान अन्योन्याश्रित होते है।
- विद्यार्थियों का ध्यान उसी बात और विषय पर केन्द्रित होता है, जिसमें वे रुचि लेते हैं।

16. भाषा–संसर्ग विधि

उपनाम – अव्याकृति विधि

इस विधि में भाषा के साथ–साथ व्यावहारिक रूप से व्याकरण सिखाई जाती हैं। इस विधि का प्रयोग अध्यापक प्राथमिक स्तर पर बालक को व्यावहारिक व्याकरण सीखाने में करता है। इस विधि में विद्यार्थी को शुद्ध भाषा का संसर्ग करवाया जाता हैं। इसलिए इसे संसर्ग विधि भी कहा जाता है। इस विधि में विद्यार्थियों को शुद्ध परिष्कृत रचनाएँ उपलब्ध करवाई जाती हैं। वह मानक रचनाएँ होती है। संसर्ग प्राप्त होने पर बालक को उस भाषा जैसा ज्ञान प्राप्त होता हैं। इस विधि को मानने वालों का कथन है कि अलग से व्याकरण की शिक्षा देना उपयुक्त नहीं है। वे व्याकरण की शिक्षा को दोषपूर्ण मानते हैं। उनका ऐसा विचार है कि यदि हम चाहते है कि यदि हम चाहते हैं कि विद्यार्थियों का भाषा पर पूरा–पूरा अधिकार हो तो उन्हें ऐसे लेखकों की रचनाएँ पढ़ने को दी जाएँ, जिनका भाषा पर अच्छा अधिकार हो।

- रचना तथा अभ्यास द्वारा व्याकरण का ज्ञान कराया जा सकता है।
- व्याकरण के बिना ही भाषा का शुद्ध प्रयोग सिखाना और इस प्रकार शिक्षण के उद्देश्य की पूर्ति करना। इस विधि का मुख्य ध्येय है।
- जो विद्वान व्याकरण को एक कठिन व नीरस विषय मानते हैं उनके मतानुसार बच्चों को व्याकरण के नियमों की जानकारी अलग से देने की कोई आवश्यकता नहीं है।
- इस प्रणाली के अनुसार बच्चों को ऐसे लेखकों की रचनाएँ पढ़ने के लिए दी जाएँ जिनका भाषा पर पूर्ण अधिकार हो।
- बच्चों को ऐसे लोगों के साथ वार्तालाप करने का अवसर दिया जाए जो मौखिक अभिव्यक्ति में शुद्ध भाषा का प्रयोग करतें हों।
- इस प्रणाली में व्याकरण के नियमों का ज्ञान कराए बिना, भाषा के शुद्ध रूप का अनुकरण करने का अवसर प्रदान कर छात्रों को भाषा के शुद्ध रूप का प्रयोग करना सिखाया जाता है।

गुण:

- प्राथमिक कक्षाओं में व्याकरण पढ़ाने की यही प्रणाली लाभदायक है।
- प्रारम्भिक कक्षा में रचना तथ अभ्यास द्वारा भाषा का शुद्ध प्रयोग कराया जा सकता है।
- अध्यापक केवल यह देखे कि बच्चे जो कुछ बोलें या लिखें वह ठीक हो।
- मौखिक रचना पर्याप्त मात्रा में हो पर बच्चे बिना रोक–टोक के शुद्ध बोलते जाएँगे।
- कम समय में बालक पढ़ना सीख जाता है।

दोष:

- व्याकरण का सैद्धांतिक ज्ञान न दिया जाकर उसके व्यावहारिक पक्ष पर जोर दिया जाता है।
- व्याकरण में समस्त नियम केवल भाषा–संसर्ग द्वारा नहीं सीखे जा सकते है। यदि सीख भी जाएँ तो समय अधिक व्यय होगा।
- भाषा की शिक्षा दी जा सकती है, व्याकरण की नहीं । भाषा शिक्षण की विधि की जा सकती है, व्याकरण शिक्षण की नहीं।
- किसी भाषा को पूर्ण रूप से सिखाने के लिए व्यवस्थित रूप से व्याकरण के सीखने की आवश्यकता पड़ती है।
- समय पर अधिक व्यय होता है।
- अध्यापक व्याकरण सिखाए बिना विद्यार्थियों को शुद्ध भाषा के सम्बन्ध में निश्चित नहीं हो सकता ।
- प्राथमिक स्तर पर बच्चों को व्यावहारिक व्याकरण का ज्ञान देने के लिए तो यह विधि उपयोगी है परन्तु व्याकरण का तार्किक ज्ञान कराने के लिए अन्य विधियों की सहायता लेनी होगी।
- व्याकरण के नियमों का व्यवस्थित ज्ञान भी नहीं हो पाएगा।
- व्याकरण के नियमों का व्यवस्थित ज्ञान भी नहीं हो पाएगा। नियमों की जानकारी के अभाव में भाषा की शुद्धता या अशुद्धता का निर्णय लेना भी असम्भव ही है।

17. साहचर्य विधि

मॉन्टेसरी विधि से संबंधित इस विधि का अविष्कार मारिया मॉन्टेसरी ने किया, जिसे साहचर्य विधि के नाम से जानते हैं। इस विधि में कई चित्र तथा वस्तुएँ कमरे में एकत्रित कर ली जाती है, जो बालकों की अनुभव–परिधि के भीतर हों। इन वस्तुओं तथा चित्रों आदि के नाम कार्डों पर लिखे होते हैं। अभ्यास करते–करते बालक अनेक शब्दों और वर्णों से परिचय प्राप्त कर लेता है। केवल कुछ संज्ञाओं का ही ज्ञान, उपयोग केवल छोटी कक्षाओं तक ही सीमित है। इस विधि का आविष्कार इटली में 1870 ई. में हुआ।

इस विधि में बालकों को संज्ञा शब्दों का ज्ञान आसानी से करवाया जा सकता है।

यह विधि छोटी कक्षाओं के लिए अर्थात प्राथमिक कक्षाओं के लिए उपयुक्त मानी जाती है। विशेष रूप से इस विधि का प्रयोग प्रारम्भिक कक्षाओं के बालकों के लिये किया जाता है। जैसे–कार्ड, चित्र, मॉडल चार्ट आदि देकर बालक अध्यापक के निर्देशन में संबंधित विषय वस्तु का ज्ञानार्जन करते है। इसमें बालकों की बुद्धि का प्रयोग होता है। संज्ञा शब्दों का ही ज्ञान कराया जाता है।

विशेषताएँ–

1. इस विधि में बालक अपनी बुद्धि का प्रयोग करतें हैं।
2. यह रुचिकर विधि है।
3. इस विधि की सबसे बड़ी विशेषता है कि यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है।

4. यह विधि प्राथमिक कक्षा के बालकों को स्थायी ज्ञान देती है।

दोष–

1. सभी कौशलों का विकास नहीं हो पाता।
2. समय अधिक लगता है।
3. विद्यालय वातावरण संतुलित नहीं रहता।
4. बच्चों में शीघ्रता से थकान पैदा करती है।

18. व्याख्यान विधि

व्याख्यान विधि सर्वाधिक प्राचीन विधि है जो वर्तमान में सर्वाधिक आलोचना किये जाने के उपरान्त भी सर्वाधिक प्रयुक्त की जाती है। सम्भवतः यह प्रयोग में सरल, क्रमबद्ध व कम परिश्रम वाली होने के कारण ही व्याख्या को मृत मानने के बावजूद भी इसकी महत्ता कम नहीं हुई है। यह ज्ञान स्थानान्तरण का उपयुक्त स्त्रोत है। यह केवल सृजनात्मक विधि है।

इसमें अध्यापक केन्द्र बिन्दु होता है, केवल वही सक्रिय होता है। छात्र निष्क्रिय श्रोता मात्र होते हैं। ''यह उद्भाव है जिसके द्वारा छात्रों में ज्ञान व सूचना का विकास होता है।''

व्याख्यान विधि के पद –

वह प्रक्रिया जिसमें प्रत्यय व सूचना को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जाता है, पद कहलाते हैं। व्याख्यान विधि के पद निम्न हैं –

(1) व्याख्यान की विषय वस्तु व प्रकरण निर्धारित करना

(2) अध्यापक द्वारा योजना बनाना

(i) छात्रों का पूर्व ज्ञान निर्धारण
(ii) शिक्षण के उद्देश्य निर्धारित करना
(iii) पाठ्यपुस्तक की रूपरेखा तैयार करना
(iv) उचित उदाहरणों को स्थान देना

(3) अध्यापक द्वारा व्याख्यान देना या प्रस्ततिकरण तथा छात्रों द्वारा ग्रहण करना

(4) सारांश प्रस्तुत करना

(5) मूल्यांकन करना

व्याख्यान की सम्प्रेषण व्यवस्था –

इस सम्प्रेषण मे शिक्षक केन्द्र में होता है। कोई भी छात्र अपने विचार शिक्षक के माध्यम से अन्य छात्रों को बता सकता है।

गुण –

- यह कम खर्चीला व अल्प आयु विधि है।

(i) समय की बचत (कम समय में अधिक ज्ञान)

(ii) श्रम की बचत (एक साथ कई छात्रो को व्याख्यान देने से उन्हें अलग–अलग समझाने का श्रम व सहायक सामग्री इत्यादि बनाने की बचत)

(iii) धन की बचत (प्रयोगशाला आदि की आवश्यकता नहीं)।

- तथ्यात्मक ज्ञान एवं ऐतिहासिक विवेचना हेतु (जीवनी, आत्मकथा हेतु) सर्वोत्तम
- सरल, संक्षिप्त एवं तीव्र गति से चलने वाली। अध्यापक सुरक्षित व सन्तुष्ट अनुभव करता है क्योंकि काफी पाठ्य का कम समय में शिक्षण हो जाता है।
- तार्किक क्रम सरलता से स्थापित।

19. प्रदर्शन विधि

- यह अध्यापक की मित्र विधि है। किसी घटना को दृश्य के रूप में प्रस्तुत करना तकनीकी भाषा में प्रदर्शन कहलाता है।
- अधिगम प्रक्रिया में केवल मात्र अमूर्त विषय–वस्तु के विषय में ज्ञान दिया जाये तो वह मस्तिष्क में स्थायी नहीं रह पाता है जबकि मूर्त विषयवस्तु का ज्ञान अपेक्षाकृत स्थायी रहता है। प्रदर्शन विधि इसी सिद्धान्त पर आधारित है।
- प्रदर्शन विधि में ''मूर्त से अमूर्त'' शिक्षण सूत्र का प्रयोग किया जाता है जो कि व्यावहारिक रूप से सफल एवं उपयोगी सूत्र है। इस विधि में शिक्षक छात्रों के सामने प्रयोग का प्रदर्शन करता है तथा प्रयोग से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों की व्याख्या प्रस्तुत करता है। प्रदर्शन के समय छात्र भी सक्रिय रहता है। इस प्रकार पाठ द्विपक्षीय हो जाता है, इसके अन्तर्गत शिक्षक एवं छात्रों की पाठ में लगातार रुचि बनी रहती है। इस विधि में छात्रों की निरीक्षण एवं तर्क शक्ति का भी पर्याप्त विकास होता है।

गुण –

- इस विधि में पाठ द्विपक्षीय हो जाता है।
- स्थायी ज्ञान – घटनाओं का अधिक स्थायी प्रभाव छात्रों के मस्तिष्क पर छोङा जाता है।
- इस विधि से कल्पना शक्ति का विकास होता है।
- शिक्षक के लिए उपयुक्त – शिक्षक के लिये समय और शक्ति की दृष्टि से प्रदर्शन अधिक उपयुक्त विधि है। प्रदर्शन के दौरान शिक्षक का अपना नियन्त्रण रहता है। अतः वह शिक्षण बिन्दुओं का अधिक स्पष्ट निर्देशन कर सकता है।
- मनोवैज्ञानिक विधि – यह विधि मनोवैज्ञानिक है क्योंकि वस्तु छात्रों के सामने होती है। उन्हें स्वयमेव ही सामान्यीकरण विकसित करने का अवसर प्राप्त होता है।
- विषयवस्तु का अधिक स्पष्टीकरण – प्रदर्शन के माध्यम से वैज्ञानिक घटनाओं का अधिक स्पष्टीकरण सम्भव है। वास्तविक पदार्थ को क्रियात्मक रूप में देख सकते है।

दोष –

- यह विधि खर्चीली होती है।
- कुछ छात्र ही सक्रिय रह पाते है, अधिकांश छात्र निष्क्रिय रहते है।
- इस विधि में करके सीखने के सिद्धान्त के लिए कोई स्थान नहीं है।

- यह शिक्षक केन्द्रित विधि है।
- सभी छात्रों को उपकरण के विभिन्न अंगों के पूरे परिचय का अवसर नहीं मिल पाता है।
- व्यक्तिगत भिन्नता के लिए कोई स्थान नहीं है। मन्द बुद्धि और प्रतिभाशाली छात्रों को सामान्य छात्रों के साथ एक ही गति से चलाया जाता है।
- प्रयोगशाला सम्बन्धी अपेक्षित कौशल का विकास नहीं हो पाता।

20. श्रुतलेखन–अभ्यास विधि

❖ मौंटेसरी के मतानुसार वाचन से पहले लेखन की शिक्षा दी जानी चाहिए। फ्रोबेल एवं गाँधी के मतानुसार लिखने से पहले पढ़ना और वर्णमाला के अक्षरों को लिखने से पहले चित्रांकन सीखाना चाहिए, क्योंकि वाचन मानसिक प्रक्रिया है जबकि लेखन शारीरिक व मानसिक दोनों।

अक्षर रचना (लिखना) सिखाने की विधियाँ –

❖ सार्थक रेखाएँ खींचने की विधि –
बालक को सर्वाधिक सार्थक रेखाएँ खींचने की शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि वह उन रेखाओं द्वारा वर्णन बनाना सीख सके। जैसे खडी पाई 'I' से 'आ' की मात्रा का निर्माण करना।

❖ खंडशः लेखन विधि –
विद्यार्थी के लिए सम्पूर्ण अक्षर की रचना एक बार समझ पाना कठिन कार्य है। वर्ण को आरम्भ करने की विधि का ज्ञान बहुत आवश्यक है। लेखनी को किस ओर से किस ओर घुमाना है इसके लिए प्रत्येक खंड का तीर के चिह्न से समझाया जा सकता है। इन संकेतों में कुछ भिन्नता भी सम्भव है।

❖ रेखा अनुसरण विधि –
यह विधि अत्यधिक प्राचीन और उपयोगी विधि मानी जाती है। इसके अंतर्गत अध्यापक कागज, स्लेट या तख्ती पर वर्ण के रूप को पैंसिल, बिन्दुओं और हल्की स्याही से अंकित कर देता है। इस विधि के अंतर्गत अध्यापक विद्यार्थी का हाथ पकड़कर रेखाओं का अनुसरण करके वर्ण को उभारने में मदद करता हैं

❖ अनुलेखन विधि–
यह विधि रेखा अनुसरण विधि का अगला क्रम है। इसके अंतर्गत कोई भी वर्ण सुन्दर एवं मोटे रूप में लिख दिया जाता है और विद्यार्थी इस वर्ण को देखकर इसका अनुलेखन करता है।

❖ स्वतंत्र लेखन विधि–
इस विधि में वर्ण को बिना देखे या नकल किये बिना उसकी मानसिक चित्रछाया के अनुसार लिखा जाता है। कुशाग्र बुद्धि बालक बहुत कम समय में इस विधि को अपना लेते हैं।

❖ मौंटेसरी विधि–
इस विधि में लकड़ी, गत्ते एवं प्लास्टिक से बने वर्णों का प्रयोग किया जाता है और बालक द्वारा उस वर्ण के ऊपर उंगली फेरकर लिखने का अभ्यास किया जाता है।

❖ पेस्टॉलोजी विधि–
इसमें पहले वर्ण लेखन में उपयोगी रेखाओं व वृत्तों आदि का वर्गीकरण किया जाता है और उनके पीछे सार्थक रेखाएँ खींचने का अभ्यास कराया जाता है।

❖ जेकटाट विधि–
इसके अंतर्गत विद्यार्थी किसी वाक्य को लिखता है और तत्पश्चात् वही वाक्य बिना उसे देखे लिखता है। लिखने के बाद वह इस वाक्य के शब्दों को मूल वाक्य के शब्दों से मिलाता है और की गई अशुद्धियों को सुधारता है। यह पद्धति भारतीय पद्धति पर आधारित है।

❖ विश्लेषण विधि–

इन विधि के अनुसार लेखन कार्य शब्द से आरम्भ होता है। इसमें विद्यार्थी को एक चित्र दिखाया जाता है और उस चित्र के नीचे उसका नाम लिखा जाता है। बालक को चित्र के नाम के पहले वर्ण को खंडशः लेखन सिखाया जाता है।

- ❖ संश्लेषण विधि–
  इस विधि के अंतर्गत पहले वर्ण लिखना सिखाया जाता है। इसके बाद उनसे बनने वाले शब्द फिर उन शब्दों से बनने वाले वाक्य–सिखाया जाता है।
- ❖ परम्परागत विधि–
  इस विधि में सर्वप्रथम स्वर, व्यंजन उसके पश्चात् मात्राएँ तथा शब्द उसके पश्चात् वाक्य लेखन का ज्ञान दिया जाता है।
- ❖ समान आकृति वर्ण समूह विधि–
  यह विधि पेस्टोलॉजी की रचनात्मक विधि के समकक्ष है। इसमें वर्णों को समान समूह में बाँट लिया जाता है और इस दृष्टि से समान आकृति लिखने में सरलता रहती है।

21. दल–शिक्षण विधि

यह एक नवाचार विधि है।'दल' शब्द का अर्थ होता है समूह अर्थात् जब किसी कक्षा–कक्ष में विशेषज्ञ शिक्षक समूह द्वारा अध्यापन कार्य किया जाता है, तब वह दल शिक्षण विधि के नाम से जाना जाता है। इस विधि को सहकारिता शिक्षण विधि भी कहते है।

- ➢ दल शिक्षण विधि का विकास सर्वप्रथम 1955 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय, अमेरिका के शोध छात्र मिसीगन व हार्वे द्वारा किया गया।

परिभाषाएँ –

डेविड वारविक के अनुसार, ''टोली शिक्षण व्यवस्था का एक स्वरूप है, जिसमें कई शिक्षक अपने स्रोतों, अभिरुचियों तथा दक्षताओं को एकत्रित करते हैं और छात्रों की आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षकों की एक टोली द्वारा प्रस्तुत किया जाता है वे विद्यालय की सुविधाओं का समुचित उपयोग करते हैं।''

प्रो. कार्लो औलसन् महोदय के अनुसार, '' अतिरिक्त ज्ञान एवं कौशल से युक्त दो–तीन अध्यापक परस्पर सहयोग से किसी शीर्षक की शिक्षण योजना का निर्माण करते हैं एवं एक ही समय में छात्र समूह को पढ़ाते हैं तब वह विधि दल शिक्षण विधि कहलाती है।''

जे.पी.पुरोहित के अनुसार, ''दल शिक्षण विधि अध्यापक की आधुनिक तकनीक है। इस विधि में दो या दो से अधिक अध्यापक मिलकर नियमित रूप से किसी कक्षा की अध्ययन सम्बन्धी योजना बनाते हैं, उसे क्रियान्वित करते हैं तथा उसका मूल्यांकन करते हैं।''

शैयलिन तथा ओल्ड के अनुसार, ''दल शिक्षण अनुदेशात्मक संगठन का वह प्रकार है जिसमें शिक्षण प्रदान करने वाले व्यक्तियों को कुछ छात्र सौंप दिये जाते है। शिक्षण प्रदान करने वालों की संख्या दो या उससे अधिक होती है जिन्हें शिक्षण का दायित्व सौंपा जाता है वे एक ही छात्र समूह को सम्पूर्ण विषयवस्तु या उसके किसी महत्वपूर्ण अंग का एक साथ शिक्षण कार्य करते हैं।''

कार्यप्रणाली – दल शिक्षण प्रणाली के तीन सोपान होते है –

1. योजना
2. व्यवस्था
3. मूल्यांकन

दल–शिक्षण के सिद्धान्त –

1. अधिगम का निरीक्षण ।
2. शिक्षक की जिम्मेदारी का।
3. छात्रों की संख्या का।
4. समस्या समाधान का।
5. सामग्री के चयन का।
6. विषय–वस्तु के व्यवस्थित क्रम का।
7. अनुशासन स्थापना का।

योजना –

1.विषय का निर्धारण।

2. उद्देश्यों का निर्धारण।

3. अपेक्षितगत व्यवहारगत परिवर्तनों का लेखन।

4. छात्रों के पूर्वज्ञान का परीक्षण।

5. शिक्षकों को योग्यता एवं कुशलता के अनुसार कार्य वितरण।

6. छात्रों की उपलब्धि का मूल्यांकन करना।

दल के निर्माण की प्रक्रिया:

1.विभिन्न संस्थाओं के विभिन्न विभागों के अध्यापक ।

2. एक ही संस्था के एक ही विभाग के अध्यापक ।

3.विभिन्न संस्थाओं के एक ही विभाग के अध्यापक।

4. एक ही संस्था के विभिन्न विभागों के अध्यापक ।

गुण –

1. यह विधि विशेष ज्ञान प्रदान करती है।
2. समय, धन एवं शक्ति का सदुपयोग होता है।
3. छात्रों में अनुशासन भावना का विकास होता है।
4. छात्रों को विभिन्न विषयों की आधुनिकतम जानकारी प्राप्त होती है।
5. संतुलित सामाजिक विकास संभव।

विशेष:

- ✓ आम सभा सत्र : दल के नेता द्वारा अध्यापकों का परिचय करवाते हुए प्रकरण की सूचना देना तथा मुख्य बिन्दुओं की चर्चा।
- ✓ लघुसभा सत्र: आमसभा सत्र में छूटे हुए बिन्दुओं पर सहयोगी अध्यापकों द्वारा चर्चा।
- ✓ प्रयोगशाला सत्र: छात्र अपनी शंकाओं का समाधान संबंधित विशेषज्ञ से प्राप्त करते है।

दोष –

हिन्दी साहित्य चैनल

1. आर्थिक भार अधिक हो जाता है। 2. समन्वय करने में कठिनाई हो जाती है

3. दल के सदस्यों में सहयोग की भावना कम ही पाई जाती है।

1. सम्पूर्ण पाठ्यक्रम नहीं होता है।

22. भाषा–प्रयोगशाला विधि

भाषा प्रयोगशाला विधि भाषा प्रयोगशाला शिक्षण के क्षेत्र में अन्य दृश्य, श्रृव्य उपकरणों की भाँति यह सहायता मात्र है। कक्षा–अध्यापन का पूरक ही 'भाषा–प्रयोगशाला' है। भाषा रिकॉर्डिंग, अधिक स्वाभाविक वातावरण की सृष्टि करता है। भाषा–शिक्षण में प्रारम्भ में पढ़ने–लिखने के स्थान पर सुनने–बोलने पर बल दिया जाता है। भाषा में तीव्रता से गति आती है। सभी पक्षों पर समान बल दिया जाना चाहिए।

प्रो. एडविन पैकर के अनुसार, 'भाषा–प्रयोगशाला वैद्युतिकीय साजसज्जा से युक्त एक शिक्षण कक्ष होता है, जिसका उपयोग भाषा में समूह शिक्षण के लिए किया जाता है।'

भाषा प्रयोगशाला विधि की उपयोगिता –

1. अपनी–अपनी गति से विद्यार्थी अभ्यास कर सकता है।

2. तत्काल अशुद्धि ठीक कर शुद्ध उच्चारण सुनने की सुविधा भाषा प्रयोगशाला में अधिक संभव है।

3. पाठ्य सामग्री दुहराने के लिए अवसर प्राप्त होता है।

4. प्रबलन प्राप्त होता है और आत्म–विश्वास बढ़ता है।

5. भाषा प्रयोगशाला में कक्षा में पढ़ाई गई पाठ्यसामग्री का अभाव कराया जाता है।

6. कक्षा में दुहराने में जो समय लगता है, उसकी बचत होती है।

7. भाषा के विभिन्न पक्षों का अध्यापन भाषा–प्रयोगशाला में सरलता से संभव है–श्रुतलेख, वाक्य, पदबंध, पठन, शब्दावली, अनुच्छेद को बोधगम्य कराना, ध्वनिभेद, मुक्त भाषण, श्रवणाभ्यास।

भाषा प्रयोगशाला के प्रकार – ये कई प्रकार से हो सकती है –

1. तार की दृष्टि से –

(अ) तार युक्त प्रयोगशाला– विद्यार्थी को निश्चित स्थान पर बैठना होता है।

(ब) तार मुक्त प्रयोगशाला – समस्त व्यवस्था तारमुक्त होने के कारण तथा बेटरी–चालित रिसीवर होने के कारण विद्यार्थी बूथ को कहीं उठाया व रखा जा सकता है।

2. प्रयोग की दृष्टि से – प्रोग्राम से तात्पर्य उस पाठ्यसामग्री से है, जो शिक्षक प्रसारित करता है। एक साथ एकाधिक प्रोग्राम प्रसारित किए जा सकते हैं।

3. विद्यार्थी की क्रियाशीलता की दृष्टि से क्रियाहीन प्रयोगशाला – इसमें विद्यार्थी के पास न कोई माइक होता है और न टेपरिकॉर्डर। दूसरी ओर शिक्षक कन्सोल से सिवाय प्रसारण के कुछ नहीं कर सकता है, जिसके फलस्वरूप शिक्षक, विद्यार्थी कोई बातचीत नहीं कर सकता।

4. श्रव्य क्रियाशील प्रयोगशाला – इस प्रकार की प्रयोगशाला में विद्यार्थी हेंड सेट की सहायता से प्रसारित पाठकों को तो सुन ही सकता है पर साथ ही माइक के माध्यम से दुहराये गए पाठ को स्वयं भी सुन सकता है और अध्यापक के पास तक भी भेज सकता है। विद्यार्थी के पास अपना टेपरिकॉर्डर नहीं होता, जिससे वह मास्टर टेप के पाठ की और अपने उच्चारण को टेप कर सके। इसको ही ब्राडकास्ट प्रयोगशाला भी कहा जाता है।

5. श्रव्य क्रियाशील – मिलान प्रयोगशाला

विद्यार्थी मास्टर टेप को सुन सकता है, दुहराता है और रिकॉर्ड भी करता है।

यह सबसे अधिक सुविधाजनक है।

भारतीय भाषा संस्थान तथा इसके विभिन्न केन्द्र मैसूर, भुवनेश्वर, पटियाला, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी आदि स्थानों पर इस प्रकार की ही प्रयोगशालाएँ है। इसके पुस्तकालय प्रयोगशाला भी कहते है। इसका आधुनिक रूप डायल प्रयोगशाला है। दूरस्थ नियंत्रण भी संभव है।

23. व्यतिरेकी शिक्षण विधि

इस विधि को भोलानाथ तिवारी ने द्वितीय भाषा शिक्षण की सर्वोत्तम विधि बताया।
व्यतिरेकी विधि में मातृभाषा और द्वितीय भाषा में असमान तत्वों पर बल दिया जाता है।
किसी एक भाषा के वाक्य को लिखकर उसके कर्त्ता ,कर्म और क्रिया की तुलना दूसरी भाषा के वाक्य की संरचना से की जाती है।
व्यतिरेकी विधि द्वारा किन्हीं दो भाषाओं का सही तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया जाता है।

आधुनिक भाषा विज्ञान की दूसरी मान्यता यह है कि प्रत्येक भाषा अपने में स्वतन्त्र है। उसका अपना विशेष गठन होता है जो दूसरी भाषा के गठन से भिन्न है। द्वितीय भाषा की शिक्षा उसी के गठन के परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिए, अपनी भाषा के गठन के अनुसार नहीं। द्वितीय भाषा शिक्षण की सफलता इस बात पर निर्भर है कि मातृभाषा तथा द्वितीय भाषा का ऐसा वर्णनात्मक व्याकरण बनना चाहिए जो उन दोनों के सही रूप को प्रकट कर सके।

- एक ही हिन्दी पाठ्यपुस्तक सभी अहिंदी भाषियों के लिए ठीक नहीं होगी, क्योंकि व्यतिरेकी विधि के आधार पर प्रत्येक भाषा की तुलना–समानता–असमानता का रूप भिन्न होगा।
- व्यतिरेकी विधि का सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि द्वितीय भाषा की जो ध्वनि, रूप, वाक्य गठन आदि स्पष्ट हो चुके हों उन्हीं पर आधारित बातचीत, संवाद, वितरण आदि के अभ्यास कराए जाएँ। अपरिचित ध्वनि, रूप या वाक्य गठन बिना स्पष्ट किए शिक्षार्थियों के सम्मुख न लाए जाएँ। यह ध्यान रखने की बात है कि बातचीत में उस भाषा का शुद्ध एवं स्पष्ट उच्चरित रूप ही सामने आना चाहिए। टेपरेकार्डर और ग्रामोफोन आदि की सहायता इस दृष्टि से विशेष उपयोगी होती है। इससे सही उच्चारण–अभ्यास का अवसर मिलता है।
- 'व्यतिरेकी विधि' में मातृभाषा और सीखी जाने वाली द्वितीय भाषा दोनों का भाषा–वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है।
- ध्वन्यात्मक संरचना, रूप रचना, वाक्य गठन, मुहावरे, शब्द–समूह आदि के क्षेत्र में मातृभाषा और द्वितीय भाषा का अन्तर, समानता–असमानता–स्पष्ट रूप से जान लेने से बालक नई भाषा के यथार्थ स्वरूप को ठीक प्रकार से पहचानता और ग्रहण करता है।
- विद्यार्थी की मातृभाषा को ध्यान में रखते हुए द्वितीय भाषा की पाठ्यपुस्तकें लिखी जाएँ। जैसे यदि मराठी भाषी विद्यार्थी को हिन्दी पढ़ानी है तो हिन्दी की पाठ्यपुस्तक उसके (मराठी) अनुसार होगी।
- दोनों भाषाओं की तुलना द्वारा ज्ञात समान एवं असमान संरचनाओं में असमान संरचनाओं के अभ्यास पर विशेष बल देने की आवश्यकता होती है क्योंकि उन्हीं के प्रयोग में त्रुटियाँ अधिक होती है।

- व्याकरणिक नियमों को कंठस्थ करने की जगह भाषाई कौशलों का अर्जन और अभ्यास अधिक उपयोगी माना जाता है। द्वितीय भाषा शिक्षण की दृष्टि से 'व्यतिरेकी विधि' द्वारा प्रदत्त उपर्युक्त सूत्र बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए है।

गुण:

1. तुलनात्मक अध्ययन का अवसर प्रदान करती है।
2. बालक दोनों भाषाओं का समान अधिगम कर सकता हैं।
3. बालकों में चिन्तनशीलता बढती है।
4. बालकों में समझ की शक्ति बढती है।

सीमाएँ:

दोनों भाषाओं में कुशल अध्यापक होनें चाहिए

मन्दबुद्धि बालकों के लिए आवश्यक नहीं है।

24. हरबर्टीय विधि

हरबर्ट की पाठ योजना प्राचीनतम पाठ योजनाओं में से एक है। इस पाठ योजना के जन्मदाता प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हरबर्ट है। प्रो. हरबर्ट की अधिगम के संबंध में यह धारणा है कि प्रत्येक छात्र बाहर से मिलने वाले ज्ञान को संचित करता रहता है, यदि नवीन ज्ञान को छोटे–छोटे सोपानों में बाँटकर उसे पूर्व संचित ज्ञान से संबंधित करके पढ़ाया जाये तो छात्र उसे अधिक शीघ्रता एवं सुगमता से ग्रहण करता है।

हरबर्ट पाठ योजना में स्मृति स्तर पर सीखने को अधिक प्रभावशाली माना जाता है। यह पाठ योजना विषय–वस्तु केन्द्रित है। इसमें पाठ के छात्रों के सम्मुख प्रस्तुतीकरण की आधिक महत्वपूर्ण माना जाता है और उस पर अधिक बल दिया जाता है, छात्रों की अपनी आवश्यकताओं, रुचियों, मूल्यों आदि को इसमें अधिक स्थान नहीं दिया जाता है।

हरबर्ट ने कक्षा शिक्षण के लिए सर्वप्रथम निम्न चार पदों का प्रतिपादन किया–

- स्पष्टता : तथ्यों व विषयसामग्री को शिक्षार्थी के समक्ष स्पष्टता से प्रस्तुत करना।
- सम्बद्ध : प्रस्तुत किए जाने वाले तथ्यों या नवीन ज्ञान को बालक के पूर्व ज्ञान से सम्बद्ध करना।
- व्यवस्था : बालक के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले तथ्यों व नवीन ज्ञान को व्यवस्थित रूप देना।
- विधि :

हरबर्ट ने उपर्युक्त चार सोपानों की विवेचना की जिसे उसके शिष्यों/अनुयायियों ने अधिक स्पष्ट व महत्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया। उसके शिष्य जिलर ने सर्वप्रथम 'स्पष्टता' को दो भागों में विभक्त किया।

(1) प्रस्तावना

(2) प्रस्तुतीकरण

हरबर्ट के एक अन्य शिष्य राइन ने इनमें एक उपकथन और जोड़ा, वह था– 'उद्देश्य'। इस परिवर्तन के बाद प्रथम दो पद इस प्रकार हो गए–

(1) (अ) प्रस्तावना

(ब) उद्देश्य कथन

(2) प्रस्तुतीकरण

इसके बाद हरबर्ट के अनुयायियों ने हरबर्ट के शेष तीन पदो के नामों में भी इस प्रकार परिवर्तन कर दिए–

- सम्बद्ध– तुलना
- व्यवस्था– सामान्यीकरण
- विधि– प्रयोग

इस प्रकार हरबर्ट के शिक्षण पद अन्तिम रूप से इस प्रकार है–

(1) (अ) प्रस्तावना

(ब) उद्देश्य कथन

(2) प्रस्तुतीकरण

(3) तुलना

(4) सामान्यीकरण

(5) प्रयोग

प्रस्तावना–

वर्तमान पाठ को पढ़ने के लिए छात्र को मानसिक तैयारी करना इस चरण के अन्तर्गत है। प्रस्तावना में अध्यापक दो या तीन प्रश्नों के द्वारा छात्रों से उत्तर लेकर यह निकलवाने का प्रयास करता है कि आज कक्षा में उसे क्या पढ़ाया जाने वाला है। प्रसंग का ज्ञान कराकर वस्तुतः छात्र के पूर्वज्ञान को नवीन ज्ञान से सम्बद्ध करने का प्रयास प्रस्तावना में किया जाता है। पाठ की सफलता बहुत हद तक एक अच्छी प्रस्तावना पर निर्भर करती है।

प्रस्तुतीकरण–

सम्पूर्ण पाठ को दो या तीन खण्डों में विभक्त कर छात्रों के सम्मुख इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे समग्र पाठ्य–सामग्री उनकी समझ में आ जाए। इसे पाठ का प्रस्तुतीकरण भी कह सकते है। इसके अन्तर्गत शिक्षक के द्वारा किया गया आदर्श वाचन छात्रों का अनुकरण वाचन काठिन्य निवारण एवं केन्द्रिय बोध के प्रश्न प्रस्तुत किये जाते है।

तुलना का सहयोग–

छात्रों के पूर्व संचित ज्ञान एवं वर्तमान नवीन ज्ञान की तुलना की जाती है तथा अन्य विषयों के ज्ञान का स्थानान्तरण भी किया जाता है। भाषा शिक्षण में आने वाली कठिनाइयों का निवारण, व्याख्या, शंका समाधान आदि की अपेक्षा शिक्षक से छात्रों को रहती है। योग्य शिक्षक उपयुक्त उदाहरणों, दृष्टान्तों से विषय को सरल, सुबोध बनाकर प्रस्तुत करता है।

सामान्यीकरण–

विद्यार्थी संचित ज्ञान के आधार पर सामान्य बातों को समझकर उसका सामान्यीकरण करते हैं। गद्य शिक्षक में इस स्तर पर पुनरावृत्ति के प्रश्न जबकि कविता शिक्षण में भाव साम्य की कविताएँ देकर सामान्यीकरण किया जाता है। अपने पूर्व संचित ज्ञान की प्रस्तुत पाठ से तुलना कर विद्यार्थी स्वमान्य सिद्धान्तों का पता (निष्कर्ष) लगाते हैं। व्याकरण के पाठों में सामान्यीकरण विशेष लाभदायी होता है।

प्रयोग–

सीखे हुए नवीन ज्ञान से निर्मित सामान्य बनाकर विद्यार्थियों से उनका प्रयोग भी कराया जाता है। इसके लिए विद्यार्थी को कहा कार्य या गृहकार्य लिखित रूप में करके लाने को कहा जाता है। पढ़ाये गये विषय को विद्यार्थी ने किस सीमा तक समझा है। इसका मुल्यांकन भी इस सोपान में किया जाता है।

हरबर्टीय विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इससे शिक्षण में क्रमबद्धता रहती है। भाषा शिक्षा में ये सोपान अत्यन्त लाभप्रद होते है। विज्ञान शिक्षण के लिए यह विधि उपयोगी नहीं है।

25. समवाय विधि

समवाय का अर्थ है – साथ–साथ अर्थात् दो तत्वों का एक साथ चलना। इस विधि में सभी विधाओं का अध्ययन एक साथ कराया जाता है। इसलिए इसे समवाय विधि कहते है। यह विधि भाषा संसर्ग विधि का ही दूसरा रूप है। इसमें व्याकरण की शिक्षा लम्बीय समवाय के द्वारा दी जाती है, यह संबंध सहसंबंध की परिकल्पना सबसे पहले हरबर्ट महोदय ने की थी। यह विधि पूर्व ज्ञान का नवीन ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करती है।

समवाय विधि को समझने का ढंग निम्न प्रकार है –

जैसे – अध्यापक गद्य का कोई पाठ पढ़ा रहा है और उसके बीच में व्याकरण का कोई बिन्दु आ गया तो अध्यापक वहीं पर उसे व्याकरण का ज्ञान सीखाएगा या अन्य इससे संबंधी कोई बात आ गई तो साथ ही चर्चा की जाती है। इस विधि में तारतम्यता नहीं रहती क्योंकि अध्यापक पद्य पढ़ा रहा है और बीच में व्याकरण पढ़ाने चले तो बच्चों का ध्यान व्याकरण पर हो जाता है। तो बालक न तो पद्य पाठ पढ़ पाता है न व्याकरण। इससे विद्यार्थियों का ध्यान भंग हो जाता है और किसी भी विषय का अधिगम नहीं कर पाते हैं।

1. इसे सहयोग विधि के नाम से जाना जाता है।

2. इस विधि में मौखिक या लिखित कार्य कराते समय गद्य शिक्षण कराते समय या रचना शिक्षण कराते समय प्रसंगिक रूप से व्याकरण के नियमों की जानकारी की जाती है।

3. व्याकरण की व्यावहारिक शिक्षा देने के लिए यह एक स्वाभाविक और रूचिकर विधि है।

4. परन्तु इसमें व्याकरण की नियमित शिक्षा नहीं दी जाती है।

5. इसमें व्याकरण के नियमों का तार्किक एवं व्यवस्थित ज्ञान नहीं दिया जाता है।

6. मूल पाठ से भटक जाने का क्षय रहता है।

समवाय विधि के सिद्धान्त –

1. हरबर्ट का संप्रत्यात्मकता का सिद्धान्त

2. हरबर्ट का सहसम्बन्ध का सिद्धान्त

3. जिल्लर का केन्द्रीकरण का सिद्धान्त

4. फ्रॉबेल की जीवन केन्द्रित शिक्षा

5. डिवी का सामंजस्यीकरण का सिद्धान्त

6. गांधी जी का समवाय का सिद्धान्त।

समवाय के प्रकार :

लम्बीय सहसम्बन्ध : एक विषय का उसी विषय के साथ सम्बन्ध स्थापित करना।

क्षैतिज सहसम्बन्ध : एक विषय का अन्य विषय के साथ सम्बन्ध स्थापित करना।

गुण :

1. इस विधि में व्याकरण की कक्षा अलग से नहीं लगानी पड़ती।

2. एक अध्यापक से ही अध्यापन सम्भव हो जाता है व समय की बचत होती है।

दोष :

1. यह विधि किसी भी विषय का सटीक ज्ञान कराने में सक्षम नहीं।

2. विद्यार्थियों का ध्यान केन्द्रित नहीं रहता व विषय की तारतम्यता।

3. भाषा के कौशलों का पूर्ण विकास कराने में सक्षम नहीं और न ही भाषा की पूरी जानकारी करवाती है।

26. प्रयोजना विधि

- प्रायोजना विधि का मूलाधार जॉन ड्यूवी की विचारधारा है।
- ड्यूवी के शिष्य किलपैट्रिक ने ड्यूवी की विचारधारा पर प्रयोजना विधि का प्रतिपादन किया।
- किलपैट्रिक के अनुसार, ''हम चाहते हैं कि शिक्षा वास्तविक जीवन की गहराई में प्रवेश करे, केवल सामाजिक जीवन में ही नहीं वरन उस उत्तम जीवन में जिसकी हम आशा करते है।''
- पार्कर के अनुसार, ''प्रोजेक्ट कार्य की एक इकाई है, जिसमें छात्रों को कार्य की योजना और सम्पन्नता के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।''
- बेलार्ड के अनुसार, ''प्रोजेक्ट यथार्थ जीवन का एक ही भाग है जो विद्यालय में प्रयोग किया जाता है।''
- स्टीवेन्सन के अनुसार, '' प्रोजेक्ट एक समस्यामूलक कार्य है, जो स्वाभाविक स्थिति में पूरा किया जाता है।''

प्रायोजना विधि के आधारभूत सिद्धान्त – प्रायोजना विधि निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है –

1. रोचकता –बालक स्वयं ही किसी समस्या के प्रोजेक्ट या कार्य को चुनते है।

2. प्रायोजना उद्देश्य – जो समस्या बालकों को हल करने के लिए दी जाती है वह उद्देश्यपूर्ण होती है।

3. क्रियाशीलता–

- बालक स्वभाव से ही क्रियाशील है। उनके अन्दर जिज्ञासा, चिन्तन, तर्क–शक्ति तथा संग्रह आदि की जो प्रवृत्तियाँ हैं, वे उन्हें किसी क्रिया के लिए प्रेरित करती हैं।
- प्रोजेक्ट विधि में बालक एवं शिक्षक क्रियाशील रहते हैं। इससे स्थाई एवं उपयोगी शिक्षा प्राप्त होती है।

4. वास्तविकता या यथार्थता –

- प्रोजेक्ट के द्वारा जो भी कार्य कराया जाता है वह वास्तविक परिस्थितियों के अनुकूल होता है जिसके फलस्वरूप बालकों को प्रेरणा मिलती है। अतः शिक्षा को बालकों के जीवन सेजोड़ा जाता है।

5. सामाजिकता –

- बालक समाज का एक अंग है। प्रोजेक्ट विधि द्वारा बालकों को अनेक ऐसे अवसर प्रदान किये जाते हैं जिनके द्वारा उनको सामाजिक जीवन का अनुभव हो सके तथा उनके अन्दर सहयोग, सद्भावना, प्रेम और सहकारिता जैसे सामाजिक गुणों का विकास हो।

6. उपयोगिता–

- उपयोगिता वाले कार्यों में ही बालक की रूचि उत्पन्न होती है। रूचि ही किसी प्रायोजना का मनोवैज्ञानिक तत्व है। अतः प्रोजेक्ट से बालक जो कुछ भी सीखता है, करके सीखता है।
- यह व्यावहारिता ही सामाजिक उपयोगिता का सबसे बडा आधार है। तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले प्रोजेक्ट छात्रों के लिए विशेष रूचिकर होते हैं। ड्यूवी ने सामाजिक उपयोगिता को ही शिक्षा का लक्ष्य माना है।

7. स्वतंत्रता –

- शिक्षक का यह दायित्व है कि बालकों को कोई कार्य अपनी ओर से करने के लिए बाध्य न करे।
- प्रोजेक्ट विधि में बालक आरम्भ से अन्त तक कार्य करने को स्वतंत्र रहता है। छात्र स्वयं योजनाओं का चुनाव एवं उनकी कार्यान्वयन विधियों का निर्धारण करते हैं।

8. व्यक्तिगत भिन्नता –

- बालकों में योग्यता, क्षमता तथा अन्य गुणों के अनुसार व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है। प्रोजेक्ट विधि में ऐसी ही व्यवस्था है कि बालक अपनीरूचियों और योग्यता के आधार पर काम करते है।

प्रायोजना विधि के सोपान या चरण या घटक –

सफलता पूर्वक परियोजना चलाने के लिए प्रोजेक्ट में निम्न चरण पद होने चाहिए –

1. परिस्थिति उत्पन्न करना –

- शिक्षक बालकों की योग्यताओं तथा क्षमताओं के आधार पर ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करें जिनके द्वारा किसी न किसी समस्या या प्रोजेक्ट को चुन सकें। इस प्रकार बालक स्वयं कुछ प्रायोजनाएँ प्रस्तुत करेंगे। प्रोजेक्ट में छात्रों की रूचि और आकर्षण के कारण वे उस सम्बन्ध में शिक्षक से विचार–विमर्श करेंगे। अध्यापक बालकों को भिन्न–भिन्न मेलों, प्रदर्शनियों, दर्शनीय स्थलों इत्यादि पर ले जाएगा तथा त्योहारों और अन्य सामाजिक गतिविधियों का परिचय कराएगा।

2. प्रायोजना कार्य का चुनाव –

- बालक प्रोजेक्ट के रूप में किसी ऐसी समस्या को चुनेंगे जिसमें अधिकांश बालकों की रूचि हो। विचार–विमर्श के द्वारा शिक्षक को प्रायोजना के गुण और दोषों से बालकों को परिचित करा देना चाहिए। शिक्षक बालकों को प्रोजेक्ट में मार्ग–प्रदर्शन करेगा। योजना के चुनने की स्वीकृति तथा निर्णय छात्रों के द्वारा ही होनी चाहिए।

3. कार्यक्रम बनाना –

- योजना निश्चित हो जाने के पश्चात् उसको पूरा करने के लिए कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। वास्तविक तथा स्वाभाविक परिस्थितियों में पूरा होने वाला कार्यक्रम विचार–विमर्श के द्वारा निश्चित किया जा सकता है। प्रत्येक छात्र को अपनी योग्यता के अनुसार कार्य मिलता है और उस योजना को सब मिलकर ही पूरा करते हैं।

4. कार्यक्रम क्रियान्वित करना –

- कार्यक्रम बन जाने के पश्चात् प्रत्येक बालक अपना कार्य 'क्रिया द्वारा सीखना' के आधार पर स्वयं करता है। सभी छात्र अपनी योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार अपने–अपने उत्तदायित्व को निभाते हैं।
- शिक्षक को उनके कार्य में सहायता, निरीक्षण, प्रोत्साहन तथा आदेश भी देना चाहिए।
- छात्र को अनेक कार्य करने पड़ते हैं, जैसे – लिखना, पढ़ना, वस्तुओं को एकत्रित करना, विचार–विमर्श करना तथा निर्माण कार्य करना आदि। छात्रों में स्व–आलोचना की आदत डालनी चाहिए।

5. कार्य का मूल्यांकन करना –

- प्रोजेक्ट पूरा कर लेने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि बालक अपने किये हुए कार्य का स्वयं निरीक्षण तथा मूल्यांकन करें।
- योजना कार्यक्रम के अनुसार इस पर सामूहिक तौर से विचार किया जाता है और तभी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।
- प्रोजेक्ट कार्य पूर्ण होने पर अध्यापक की सहायता से मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

6. कार्य का लेखा–जोखा रखना –

- प्रोजेक्ट के चुनाव से लेकर पूरा होने तक सभी क्रिया–कलापों का पूरा ब्यौरा रखा जाता है। वे अपने कार्य के बारे में कठिनाइयाँ व आलोचना आदि पंजिका में अंकित करते हैं।
- वे किये गये कार्य, उनकी विधियाँ, उपकरण, पुस्तकों आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं।

प्रायोजना विधि का महत्व –

प्रायोजना विधि का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. प्रत्यक्ष अनुभव होना –

- इस विधि के द्वारा छात्रों को स्वयं अवलोकन वा मापन आदि के अवसर मिलते हैं जिससे उन्हें स्थिति और तथ्यों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है। अर्जित ज्ञान स्थायी बनता है।

2. करके सीखना –

- बालक स्वयं 'करके सीखते' हैं, जिससे छात्रों में विषय के प्रति अधिक रूचि, उत्साह और आत्म–विश्वास उत्पन्न होता है।

3. मनोवैज्ञानिकता –

- छात्रों में जिज्ञासा, क्रियाशीलता और रचना की प्रवृत्ति उग्र रूप से विद्यमान रहती है।

4. प्रयोगात्मकता –

- योजना विधि द्वारा छात्र स्वयं प्रयोग करके, उपकरणों आदि के द्वारा मापन के आधार पर हिन्दी के तथ्यों, सम्प्रत्ययों, उच्चारण, वर्तनी अशुद्धियाँ व परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

5. उपयोगिता या व्यावहारिकता –

- इस विधि द्वारा सीखे हुए ज्ञान और तथ्यों तथा नियमों को दैनिक जीवन की समस्याओं में उपयोग कर सकता है।
- उपयोगिता या व्यावहारिकता से प्राप्त ज्ञान का अन्य स्थितियों में और अन्य समस्याओं मेंउपयोग करना जानता है।

6. स्वाध्याय की प्रवृत्ति – छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति विकसित होती है।

7. अधिगम में सरलता – उनका अधिगम सरल,सुबोध तथारोचक होता है।

प्रायोजना विधि के गुण/विशेषताएँ –

1. मनोवैज्ञानिकता –

- प्रोजेक्ट विधि मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होती है। बालकों की स्वाभाविक रूचियों, मनोवृत्तियों तथा चेष्टाओं का पूरा–पूरा ध्यान रखा जाता है।
- उनकी जिज्ञासा संग्रह – रचनात्मकता एवं अन्वेषणात्मक प्रवृत्तियों का पोषण होता है। अनुभव से सीखने का अवसर मिलता है।

2. चरित्र–निर्माण में सहायक–

- प्रोजेक्ट के द्वारा बालकों के सर्वांगीण विकास में पर्याप्त सहायता मिलती है।
- उनमें आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, सामाजिक गुणों, सौन्दर्यानुभूति,नेतृत्व तथा भावात्मक स्थिरता आदि का विकास होता है।

3. प्रयोगात्मक एवं व्यावहारिक विधि –

- इसमें छात्र व अध्यापक दोनों क्रियाशील रहते हैं।
- इस विधि द्वारा बालक अपने वास्तविक जीवन की समस्याओं को सुलझाने का प्रशिक्षण लेते है। यह विधि 'करके सीखना' नियम पर आधारित है।
- इससे बालक की सृजनात्मक तथा क्रियात्मक प्रवृत्तियों का विकास होता है।

4. पिछड़े बालकों की समस्या –

- प्रोजेक्ट विधि में पिछड़े बालकों की भी अभिव्यक्ति के अनेक अवसर प्रदान किये जाते हैं। स्वावलम्बन की भावना सुदृढ़ होती है।

5. तर्क, निर्णय, चिन्तन, अन्वेषण शक्ति का विकास –

- इस विधि द्वारा बालकों में निरीक्षण, तर्क, चिन्तन, अन्वेषण तथा निर्णय लेने की शक्ति का विकास होता है।

6. प्रजातन्त्रवादी भावना का विकास –

- बालक स्वतंत्रता से कार्य करते हैं। बालकों में उत्तदायित्व की भावना, धैर्य, सहिष्णुता, कर्त्तव्यनिष्ठा, पारस्परिक प्रेम एवं सहयोग की भावना आदि सामाजिक गुणों का विकास होता है।

7. स्थायी एवं स्पष्ट ज्ञान –

- इस विधि में रटने का महत्व नहीं है। विद्यार्थी सतत् सक्रिय होकर पूरी लगन और प्रत्यक्ष अनुभवों एवं क्रियाओं द्वारा ज्ञान प्राप्त करते हैं। इससे अर्जित ज्ञान व्यवहार या कौशलों से अधिक स्थायी होते हैं।

8. समवाय के सिद्धान्त द्वारा शिक्षण –

- यह विधि समवायी रूप से शिक्षण देने की एक आदर्श विधि है।
- इसमें समन्वय क्रिया द्वारा स्थापित किया जाता है।
- विषय का चुनाव बालक की आवश्यकतानुसार किया जाता है।

9. अनुशासन, गृहकार्य आदि समस्याओं से मुक्ति –

- विद्यार्थी पूर्ण रूचि और उत्साह के साथ अपने–अपने उत्तदायित्व को निभाते हैं। अतः सदैव रचनात्मक अनुशासन बना रहता है। इसमें गृह कार्य देने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

10. हस्तकार्य के प्रति अनुराग –

- इस विधि में बालक मानसिक व शारीरिक परिश्रम करते हैं। वे स्वयं हाथ से काम करते है और श्रम के महत्व को समझते हैं।

प्रायोजना विधि के दोष/सीमाएँ –

1. इस विधि के प्रयोग में अधिक व्यय करना पङता है क्योंकि विभिन्न प्रकार की सामग्री तथा यंत्रों की आवश्यकता पङती है।

2. इस विधि से यदि शिक्षा दी जाये तो पूरा पाठ्यक्रम एक वर्ष की अवधि में पूरा नहीं किया जा सकता। इसका प्रयोग कुछ प्रकरण में ही सम्भव हो पाता है।

3. प्रोजेक्ट विधि के आधार पर उचित पाठ्य–पुस्तकें नहीं मिलती।

4. विद्यार्थियों की संख्या अधिक होने पर उसके अनुपात में योग्य, प्रशिक्षितएवं अनुभवी अध्यापक नहीं मिलते हैं। शिक्षण में छात्रों पर अधिक भार पङ जाता है।

5. अध्यापक को मनोवैज्ञानिक रूप से उनकी योग्यताओं, आवश्यकताओं, क्षमताओं एवं रूचियों इत्यादि से परिचित होना पङता है तथा समय–समय पर मार्ग–निर्देशन एवं निरीक्षण भी करना पङता है। इतना कार्य एक अध्यापक द्वारा सम्भव नहीं होता।

6. इसमें क्रमबद्धता अध्ययन नहीं रह पाता है।

प्रमुख शिक्षण कौशल

शिक्षण कौशल – प्रत्यक्ष रूप से अध्यापक अधिगम को सरल एवं सहज बनाने के उद्देश्य से किये जाने वाले शिक्षण कार्यों का व्यवहारों का समूह शिक्षण कौशल या अध्यापन कौशल कहलाता है।

शिक्षण एक विज्ञान है। इस आधार पर प्रशिक्षण द्वारा अच्छे शिक्षक तैयार किये जा सकते हैं। उनमें शिक्षण के लिए आवश्यक कौशलों को विकसित किया जा सकता है। इन्हीं कौशलों का उपयोग कर कक्षा में प्रभावी शिक्षण कर अच्छे शिक्षक बन सकते है। अतः शिक्षक प्रशिक्षण में इन कौशलों का विकास महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

हिन्दी–शिक्षण के लिए शिक्षण–कौशल –

सन् 1960 के दशक में ''शिक्षण और उसकी प्रभावकारिता'' पर अमेरिका में सघन चिंतन और अनुसंधान हुए। फ्लेंडर और उसके साथियों ने कक्षा–शिक्षण का विश्लेषण करके यह स्थापित किया कि कक्षा–शिक्षण वस्तुतः तीन घटकों की अन्तर्क्रिया का नाम है। वे तीन घटक हैं – अध्यापक की सक्रियता, छात्र की सक्रियता और मौन। इस विश्लेषणात्मक उपागम ने कई तरह की अध्यापन–कुशलताओं के विकास का रास्ता खोल दिया।

शिक्षण–कुशलता–''ऐसे शिक्षण व्यवहारों या क्रियाओं का नाम है जिनका लक्ष्य छात्रों को प्रत्यक्ष या परोक्ष द्वारा से सीखने मदद करना हैं।''

शिक्षण कौशलों की विशेषताएँ –

(1) शिक्षण कौशलों के प्रशिक्षण से शिक्षक व्यवहार में परिवर्तन आता है।

(2) शिक्षण कौशल कक्षा में शिक्षण की परिस्थिति उत्पन्न करते है।

(3) शिक्षण कौशल शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक होते है।

(4) शिक्षण कौशल प्रभावी शिक्षण में सहायक होते हैं।

भारत देश में अध्यापन–कुशलताओं पर कार्य 1972 में आरंभ हुआ और कुछ प्रशिक्षण–महाविद्यालयों ने इस पर अनुसंधान और प्रयोग किए। 1975 तक यहाँ के अनुकूल कुछ कुशलताओं की सूची तैयार की गई।

वह इस प्रकार हैं –

- अध्यापन के उद्देश्य लिखने की कुशलता।
- किसी पाठ की प्रस्तावना करने की कुशलता।
- प्रश्नों में प्रवाह लाने की कुशलता।
- उत्खन्न करने की कुशलता या खोजी प्रश्न करने की कुशलता।
- व्याख्या करने की कुशलता या उदाहरणों द्वारा समझाने की कुशलता।
- उद्दीपनों में विविधता लाने की कुशलता।
- मौन सम्प्रेषण की कुशलता।
- पुनर्बलन की कुशलता।
- छात्रों का प्रतिभागित्व बढ़ाने की कुशलता।
- श्यामपट्ट के उपयोग की कुशलता।
- पाठ के समापन की कुशलता।

फ्लेण्डर और उनके साथियों ने 1960 के दशक में शिक्षण और उसकी प्रभावकारिता पर अमेरिका में सघन चिंतन और अनुसंधान किये। शिक्षण तीन घटकों– (i) अध्यापक की सक्रियता, (ii) छात्र की सक्रियता (iii) मौन आदि घटकों के नाम है।

प्रमुख शिक्षण कौशल – (i) प्रस्तावना कौशल (ii) प्रश्न सहजता कौशल (iii) खोजपूर्ण प्रश्न कौशल (iv) प्रदर्शन कौशल (v) व्याख्या कौशल (vi) प्रबलन कौशल (vii) श्यामपट्ट कौशल।

1. प्रस्तावना कौशल

प्रस्तावना कौशल का सम्बन्ध पाठ को प्रारम्भ करने से पूर्व किया जाता है।

इस कौशल से सम्बन्धित सूक्ष्म पाठ तैयार करने के लिये हमें पूर्वज्ञान, सम्बन्ध–शृंखलाबद्धता सहायक सामग्री का ध्यान रखना चाहिए।

प्रस्तावना कौशल में प्रस्तावना अधिक लम्बी या अधिक छोटी नहीं होनी चाहिए। इस कौशल में 5 से 7 मिनट का समय लगता है। प्रस्तावना से बालक पाठ के अध्ययन में रुचि लेगा।

इस कौशल में अध्यापक छात्रों से प्रश्न, कहानी कह कर या किसी का उदाहरण देकर या निदर्शन से या पाठ का सार या मन्तव्य बताकर इसमें से किसी भी तकनीक या कथन का सहारा ले सकता है।

इसके लिए तीन प्रकार के प्रश्नों का उपयोग भी करता है –

1. प्रत्यास्मरण प्रश्न – ऐसे प्रश्न जिनका जवाब बालक पूर्व ज्ञान पर आधारित एवं आसानी से दे सकें।

2. निबंधात्मक प्रश्न – शिक्षक ही पूछता है एवं स्वयं ही जवाब देता है।

3. आज्ञापालन प्रश्न – जिनका जवाब 'हाँ' या 'ना' में दे सके।

2. प्रश्न सहजता कौशल

कक्षा–शिक्षण में प्रश्न पूछने की प्रक्रिया का बङा महत्व है प्रश्न के माध्यम से अध्यापक बालक को अधिक चिन्तनशील बनाता है तथा विद्यार्थियों के ज्ञान, बोध, रुचि, अभिवृत्ति आदि का पता लगाता रहता है। सहज प्रश्न कौशल से अभिप्राय है – प्रश्न एवं शिक्षक की भाषा सहज हो।

शिक्षण प्रक्रिया के आधार पर तीन प्रकार के प्रश्न होते हैं –

(i) प्रस्तावना प्रश्न, (ii) शिक्षणात्मक प्रश्न (iii) परीक्षणात्मक प्रश्न।

अध्यापक को प्रश्न पूछते समय धैर्य तथा सहानूभूतिपूर्ण व्यवहार रखना चाहिए।

विषय–वस्तु व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध प्रश्न बालकों से पूछना चाहिए। इसमें गति और विराम का भी ध्यान रखना चाहिए।

इसमें उचित संख्या में प्रश्न होने चाहिए। अध्यापक को सरल एवं स्पष्ट तथा संक्षिप्त प्रश्न पूछना चाहिए।

3. खोजपूर्ण प्रश्न कौशल

शिक्षक अपने विद्यार्थियों से विषय–वस्तु के गहन अध्ययन एवं गहराई तक पहुँचने के लिए विद्यार्थियों से खोजपूर्ण प्रश्न पूछता है।

यह एक ऐसा कौशल है जो विद्यार्थियों की नई खोज, नवीन जानकारी कल्पना करने आदि के लिए प्रेरित करता है।

खोजपूर्ण प्रश्न पूछने से विद्यार्थियों के ज्ञान को काम में लिया जा सकता है।

शिक्षक द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थता प्रकट करे तो शिक्षक को विषय–वस्तु से सम्बन्धित आलोचनात्मक सजगता के लिए खोजपूर्ण प्रश्न पूछता है।

ध्यान रखने योग्य – (i) छात्रों का ध्यान केन्द्रित करने वाले प्रश्न होना। (ii) आगे की सूचना खोजने वाला प्रश्न होगा। (iii) अर्थ संकेतकता होना – इसमें छात्र को किस दशा में उत्तर की खोज करनी है। (iv) बातों को अन्य की ओर मोङना (v) गलत उत्तर देने पर प्रश्नों के माध्यम से धीरे–धीरे सही उत्तरों की ओर ले जाना।

4. प्रदर्शन कौशल

शिक्षण की सम्पूर्ण प्रक्रिया केवल मौखिक रूप से नहीं चल सकती इसीलिए इस कौशल में किसी विषय–वस्तु को स्पष्ट करने के लिए तथा रोचक बनाने के उद्देश्य से सहायक सामग्री जैसे चित्र, आर्ट आदि से प्रदर्शन किया जाता है।

किसी पदार्थ या उत्पादन के बारे में एक सार्वजनिक प्रदर्शन और उसके मुख्य–मुख्य गुणों, उपयोगिता, कार्य–कुशलता आदि पर जोर देना ही प्रदर्शन है। प्रदर्शन कौशल से पूर्व अध्यापक को प्रशिक्षण की आवश्यकता रहती है।

ध्यान रखने योग्य –

(i) बालकों की सहभागिता

(ii) विषय–वस्तु से सम्बद्धता

(iii) प्रदर्शन का स्पष्ट उद्देश्य

(iv) प्रदर्शन की उपयुक्त गति, रोचकता।

(v) छात्रों के स्तर के अनुकूल

(vi) ध्यान के क्रम, प्रदर्शन, योजनाबद्ध एवं पूर्व अभ्यास किया हुआ हो।

5. व्याख्या कौशल

उच्च कक्षाओं में से गद्य, पद्य कविता आदि का भाव प्रकट करने, अर्थ बताने या अपने विचारों और सिद्धातों को शाब्दिक रूप में पहुँचाना ही व्याख्या कौशल कहलाती है –

थॉमस एम. रिस्क – ने अपनी पुस्तक **''Principle and Practices of Teaching in Secondary School''** ने कहा है कि –

व्याख्यान उन तथ्यों, सिद्धान्तों या अन्य सम्बन्धों का स्पष्टीकरण है, जिनको शिक्षक चाहता है कि उसके सुनने वाले समझे।

व्याख्या – वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक, तर्कात्मक

सहायक सामग्री से भी चार्ट, चित्र, टेप रिकॉर्डर आदि के प्रयोग से या माध्यम से भी व्याख्या की जाती है।

ध्यान रखने योग्य –

(i) व्याख्यान की भाषा सरल होनी चाहिए।

(ii) पाठ की गति प्रारम्भ में मंद फिर सतत् हो।

(iii) दृश्य–श्रव्य सामग्री का प्रयोग होना चाहिए।

(iv) आवाज का स्पष्ट होना आवश्यक है।

(v) निष्कर्षात्मक कथन आवश्यक है।

(vi) छात्र से जाँच प्रश्न पूछे जाने चाहिए।

(vii) उपयुक्त मुहावरों, शब्दों एवं उदाहरणों का प्रयोग

(viii) कथनों की तारत्मयता, कथन में सहजता होनी चाहिए।

6. प्रबलन कौशल

इसे प्रतिपुष्टि या सुदृढ़ीकरण कौशल भी कहते हैं। प्रबलन का पुनःबल देना है।

सकारात्मक शब्दों, व्यवहार एवं माध्यम से अधिगम की प्रक्रिया से जोङना व रुचि उत्पन्न करने का कार्य करना है। इससे सीखने की प्रक्रिया में गति आती है।

सकारात्मक पुनर्बलन – वह घटना जो किसी उद्दीपन को वैसी ही परिस्थितियों में पैदा करने पर दोबारा अनुक्रिया की सम्भावना बढ़ती है।

नकारात्मक पुनर्बलन – यदि घटना के समाप्त होने पर अनुक्रिया के नहीं होने की सम्भावना बढ़ती है तो इसे नकारात्मक पुनर्बलन कहते हैं।

शाब्दिक सकारात्मक – बालक के सही एवं संतोषजनक उत्तर देने पर अध्यापक द्वारा उसी समय प्रोत्साहन एवं उत्साहवर्द्धक शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे– अच्छा, बहुत अच्छा, शाबाश, उत्तम इन सभी क्रियाओं को शाब्दिक सकारात्मक प्रबलन कहते हैं।

सांकेतिक सकारात्मक प्रबलन – शिक्षक छात्र को प्रोत्साहित करने के लिये अशाब्दिक संकेतों का प्रयोग करता है। जैसे– सिर हिलाना, मुस्कुराना, बालक की पीठ थपथपाना आदि।

शाब्दिक नकारात्मक प्रबलन –बालकों के अशुद्ध या असन्तोषजनक उत्तर या कार्य के लिए शिक्षक द्वारा नकारात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे – गलत, ठीक नहीं, रुको, ऐसे नहीं, गोबर गणेश, मूर्ख, बेवकूफ, पागल कहीं का आदि। लेकिन इनके प्रयोग से विद्यार्थियों को यह लगेगा कि अध्यापक कक्षा में उनकी आलोचना कर रहा है अतः इस प्रकार के प्रबलन नहीं देना चाहिए।

सांकेतिक नकारात्मक – बालक के गलत या असंतोषजनक कार्य पर शिक्षक सांकेतिक नकारात्मक पुनर्बलन का प्रयोग करता है, जैस – गुस्से से देखना, आंखें दिखाना आदि।

7. श्यामपट्ट कौशल

शिक्षण प्रक्रिया में श्यामपट्ट का विशेष महत्व है। कक्षा में श्यामपट्ट अध्यापक का मित्र होता है।

शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सही, प्रभावपूर्ण एवं समुन्नत बनाने के लिये अध्यापक अनेक प्रकार से स्वकौशल का प्रदर्शन श्यामपट्ट के माध्यम से करता है। उदाहरण के लिये कार्टून, चित्र ग्राफ, समय–सारणी आदि का श्यामपट्ट के माध्यम से विद्यार्थियों को अवगत कराना। एक कुशल शिक्षक बिन्दु का नाम लिखना नहीं भूलता तथा प्रमुख बिन्दुओं को भी अंकित करता है।

घटक – (i) स्पष्ट लेखन, स्वच्छ एवं सुन्दर लेखन होना चाहिए।

(ii) अक्षरों का आकार और लिखने का क्रम सही होना चाहिए।

(iii) मुख्य बिन्दुओं को रेखांकित करना।

(iv) शब्दों के बीच में उचित अंतराल होना।

(v) श्यामपट्ट का उचित प्रयोग आवश्यक है।

(vi) चमकदार स्याही से लिखना चाहिए।

(vii) श्याम के सामने खडा नहीं होना चाहिए।

(viii) कक्षा की समाप्ति पर श्यामपट्ट को स्वच्छ करना चाहिए।

सूक्ष्म शिक्षण योजना

सूक्ष्म–शिक्षण का अर्थ

सूक्ष्म–शिक्षण का प्रारम्भ सन् 1961 से माना जाता है, लेकिन सर्वप्रथम सूक्ष्म शिक्षण का नामकरण 1963 ईस्वी में डी. एलन (डॉ. ड्वाइट एलन) ने स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय अमरीका में किया। अमेरिका के स्टेनफार्ड विश्वविद्यालय में रॉबर्ट बुश व डॉक्टर एलन के निर्देशन में कीथ व एचीसन नामक छात्रों ने वीडियो टेप के माध्यम से अध्यापन कर शीघ्र प्रतिपुष्टि प्राप्त कर लेने पर बल प्रदान किया। इसके उपरान्त हेरी गैरीसन और कैलिन बैक महोदय ने अपने–अपने प्रयासों से सूक्ष्म–शिक्षण का प्रतिपादन किया । इसमे एक कौशल हेतु 5–10 मिनट तक की पाठ योजना तैयार की जाती है। इसमें कक्षा का आकार भी छोटा रहता है (5–10 विद्यार्थी)।

☞ सूक्ष्म शिक्षण, शिक्षण का एक लघु रूप है। यह एक प्रयोगशालीय विधि है। जिसके माध्यम से शिक्षक प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षण कौशल विकसित किये जाते है। शिक्षण को यहाँ कई शिक्षण कौशलों का योग माना गया है। प्रशिक्षणार्थी को ये शिक्षण कौशल नियंत्रित वातावरण में एक–एक कर के सिखाये जाते हैं। वह इन सभी कौशलों को सीख लेता है, तब इन्हें वह आवश्यकतानुसार जोड़कर पूरा शिक्षण करता है। यही कारण है कि इसे अनुक्रम अवरोही शिक्षण सम्पर्क कहा गया है। इससे प्रशिक्षणार्थी को अध्यापन कौशल प्राप्त करने में बड़ी सहायता मिलती है। इसको विभिन्न शिक्षाविदों ने निम्न प्रकार से परिभाषित किया है–

परिभाषाएँ:

(1) एलन एवं ईव के अनुसार : 'सूक्ष्म अध्यापन नियंत्रित अभ्यास का सत्र है, जिसमें एक विशिष्ट अध्यापन व्यवहार को नियंत्रित दशाओं में सीखना संभव है।'

(2) स्टोन्स तथा मोरिस के अनुसार : 'सूक्ष्म अध्यापन अभ्यास की एक विधि है जिसमें अधिक नियंत्रण, प्रचुर विश्लेषण तथा प्रतिपुष्टि की एक नई प्रणाली का प्रयोग होता है।'

(1) एलन : ''सूक्ष्म–शिक्षण कक्षा आकार, पाठ की विषयवस्तु, समय तथा शिक्षण की जटिलता को कम करने वाली संक्षिप्तीकृत कक्षा शिक्षण विधि है।''

(2) पैक व टूकर : ''सूक्ष्म शिक्षण एक व्यवस्थित प्रणाली है जिसमें कौशलों की सूक्ष्मता से पहचान की जाती है तथा पृष्ठपोषण द्वारा शिक्षण कौशलों का विकास किया जाता है।''

(3) मैक्लीज तथा अनविन : ''सूक्ष्म–अध्यापन कृत्रिम वातावरण में अध्यापन का एक रूप है जो शिक्षण की जटिलताओं को कम करता है तथा पृष्ठपोषण प्रदान करता है।

सूक्ष्म शिक्षण में अन्तर्निहित सिद्धान्त

☞ सूक्ष्म शिक्षण मूलतः इस सिद्धान्त पर आधारित है कि शिक्षण प्रक्रिया को अनेक व्यवहारों में विभक्त किया जा सकता है। इन कक्षागत शिक्षण व्यवहरों को शिक्षण कौशल कहते है। शिक्षण कौशल को नियंत्रित वातावरण में विकसित किया जाना सम्भव है। यहाँ शिक्षण को एक जटिल प्रक्रिया मानते हुए अनेक शिक्षण–कौशलों का योग माना गया है।

☞ सूक्ष्म शिक्षण इस तथ्य पर भी आधारित है कि शिक्षण प्रक्रिया को सरल प्रक्रिया में विभक्त कर एक–एक करके वांछित कौशलों को विकसित किया जा सकता है। इन सब कौशलों को जब अलग–अलग विकसित कर लिया जाता है तब इन्हें एक साथ जोड़ कर पूर्ण शिक्षण किया जा सकता है तथा पूर्व निर्धारित शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

☞ यदि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सोचा जावे तो सूक्ष्म–शिक्षण स्किनर द्वारा प्रतिपादित अधिगम सिद्धान्त पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार यदि कोई व्यक्ति अनुकूल व्यवहार प्रदर्शित करता है तथा इस व्यवहार के प्रदर्शन करने के तुरन्त बाद उसकी प्रतिपुष्टि कर दी जावे तो व्यवहार के पुनः प्रकट होने की संभावनाएं बढ़ जाती है। इस सिद्धान्त का उपयोग सूक्ष्म–शिक्षण में प्रशिक्षणार्थी को वीडियों टेप द्वारा अथवा परिवीक्षक द्वारा उसके अध्यापन के तुरंत बाद किया जाता है। चूँकि यहाँ पाठ 5 से 10 मिनट का होता है अतः व्यवहार के पृष्ठपोषण में अधिक समय नहीं लगता।

सूक्ष्म–शिक्षण के आधार

☞ एलन और रेयन ने सूक्ष्म–शिक्षण के निम्न पाँच आधार बताये हैं–

(1) सूक्ष्म–शिक्षण वास्तविक शिक्षण है यद्यपि शिक्षण की परिस्थितियों का निर्माण इस प्रकार किया जाता है कि अध्यापक तथा शिक्षार्थी अध्यापन के अभ्यास के साथ–साथ कार्य करते हैं, तभी वास्तविक शिक्षण सम्पादित होता है।

(2) सूक्ष्म–शिक्षण में कक्षा का आकार, विषय–वस्तु की मात्रा जो कि पढ़ाई जानी है, अध्यापन समय आदि को कम करके सामान्य शिक्षण की जटिलताओं को न्यून कर दिया जाता है।

(3) सूक्ष्म–शिक्षण का मुख्य केन्द्र विशिष्ट कार्य को पूरा करने का प्रशिक्षण देना है। ये विशिष्ट कार्य शिक्षण कौशल को सीखना, किसी अध्यापन विधि का अभ्यास करना, प्रदर्शन करना, सीखना आदि में से कुछ भी हो सकता है।

(4) इस प्रविधि में पृष्ठ–पोषण का उपयोग किया जाता है। इसे साधारण भाषा में व्यवहार के सही प्रदर्शन करने का ज्ञान देना भी कहते है। ज्यों ही प्रशिक्षणार्थी सूक्ष्म–अध्यापन समाप्त करता है उसके साथ अध्यापक तथा परिवीक्षक उसके अध्यापन पर चर्चा करते हैं। यदि सम्भव हो तो उसका वीडियो टेप भी दिखाया जाता है। जिससे प्रशिक्षणार्थी को अपनी अच्छाइयाँ एवं त्रुटियाँ दोनों का ज्ञान होता है।

(5) सुक्ष्म–शिक्षण में प्रशिक्षण प्राप्ति के तीन स्तर क्रमशः ज्ञान प्राप्त करने का स्तर, कौशल अर्जित करने का स्तर तथा स्थानान्तरण स्तर है, इस प्रविधि में अध्यापन व पुनः अध्यापन की शृंखला चलती है, इससे प्रशिक्षणार्थी में कौशल का स्थानान्तरण शीघ्रता से होता है।

सूक्ष्म–शिक्षण–व्यवस्था के पद

☞ जैसा कि पूर्व में स्पष्ट किया गया है, सुक्ष्म–शिक्षण में प्रशिक्षणार्थी से सरलतम स्थितियों में अध्यापन कार्य कराया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि कक्षा का आकार छोटा, विषय वस्तु की मात्रा कम तथा अध्यापन कार्य लघु अवधि के लिए कराया जाता है। सूक्ष्म शिक्षण की प्रक्रिया में निम्नलिखित पद हैं–

(1) सर्वप्रथम अध्यापक प्रशिक्षणार्थियों को सूक्ष्म शिक्षण का अर्थ समझाता है तथा उसको व्यावहारिक ज्ञान देता है।

(2) सूक्ष्म अध्यापन में शिक्षण कौशल का सैद्धान्तिक ज्ञान अभ्यास करने से पूर्व दिया जाता है तथा इन कौशिलों में अन्तर्निहित मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को स्पष्ट करता है।

(3) अध्यापक, प्रशिक्षणार्थियों को आदर्श पाठ के माध्यम से शिक्षण कौशल व्यवहारों का प्रदर्शन करता है।

(4) इस आदर्श पाठ की कमियों तथा विशेषताओं पर विचार–विमर्श किया जाता है।

(5) प्रशिक्षणार्थियों से सूक्ष्म शिक्षण की पाठ योजनायें प्रत्येक शिक्षण कौशल के लिए अलग–अलग बनाई जाती है।

(6) अध्यापक इन सूक्ष्म पाठ योजनाओं में आवश्यकतानुसार सुधार करता है।

(7) प्रशिक्षणार्थी एक कौशल पर सूक्ष्म पाठ पढ़ाता है जिसे यदि सम्भव हो तो वीडियों टेप कर लिया जाता है। इसे शिक्षण पद कहते है।

(8) सूक्ष्म पाठ के तुरंत बाद पढ़ाये गये पाठ पर आपसी विचार–विमर्श कर उसकी अच्छाईयाँ तथा कमियाँ ज्ञात की जाती हैं। कमियों को दूर करने के लिए प्रशिक्षणार्थी से पाठ के पुनः निर्माण किये जाने हेतु कहा जाता है। यह मूल्याँकन पद कहलाता है।

☞ इसके बाद प्रशिक्षणार्थी को दुबारा पाठ पढ़ाना पड़ता है, उसकी कमियाँ पुनः निकाली जाती हैं तथा प्रशिक्षणार्थी इन कमियों को दूर करने का प्रयास करता है। यह क्रम तब तक चलता है जब तक कि वह एक कौशल को पूरा नहीं सीख लेता। इसके बाद वह दूसरा कौशल सीखता है।

सूक्ष्म–शिक्षण–चक्र

☞ सूक्ष्म शिक्षण का उद्देश्य प्रशिक्षणार्थी को शिक्षण में पूर्ण प्रशिक्षण देना है। यह प्रशिक्षण बिना अभ्यास एवं प्रतिपुष्टि के सम्भव नहीं है अतः जैसे ही प्रशिक्षणार्थी पाठ योजना प्रस्तुत करता है, परिवीक्षक तथा अन्य प्रशिक्षणार्थी उसकी कमियों तथा अच्छाइयों को लिखते हैं। प्रस्तुतीकरण के पश्चात् इस पर खुली चर्चा होती है। इस चर्चा के आधार पर प्रशिक्षणार्थी को पुनः पाठ निर्माण कर उसी समय दुबारा पढ़ाने को कहा जाता है तथा यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि वह शिक्षण कौशल को पूर्ण रूप से अपने अन्दर विकसित न कर ले।

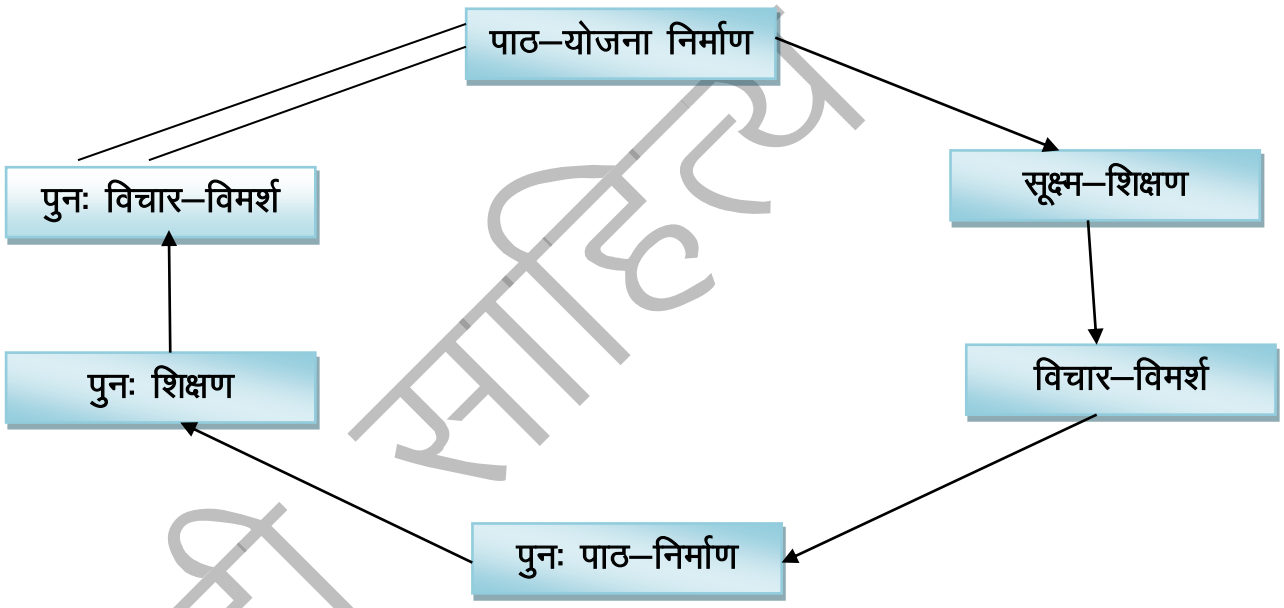

☞ सूक्ष्म–शिक्षण–चक्र में लिये जाने वाला समय निम्न प्रकार होना चाहिये–

सूक्ष्म–शिक्षण–पाठ	5 मिनट
पाठ पर विचार–विमर्श	10 मिनट
पाठ का पुनः निर्माण	15 मिनट
पुनः शिक्षण	5 मिनट
पुनः शिक्षण–पाठ पर विचार –विमर्श	10 मिनट

☞ इस प्रकार सूक्ष्म–शिक्षण–चक्र का समय 45 मिनट का निर्धारित किया गया है। उपर्युक्त लिखित समय–विभाजन में परिवर्तन किया जा सकता है।

पासी ने सूक्ष्म अध्यापन अवधि का निर्धारण निम्न प्रकार से किया है–

सूक्ष्म–शिक्षण– 5 से 10 मिनट

सूक्ष्म–शिक्षण पाठ पर चर्चा– 10 से 15 मिनट

पाठ का पुनः निर्माण–सुविधानुसार

पुनः शिक्षण– 5 से 10 मिनट
पुनः शिक्षण पर चर्चा– 10 से 15 मिनट

सूक्ष्म शिक्षण का महत्त्व

☞ शिक्षण को सीखने के संदर्भ में ब्राउन लिखते हैं कि जम्बोजेट को हवा में उड़ाने या हृदय का ऑपरेशन करने के लिए बहुत से कौशल की आवश्यकता होती है। कोई भी विद्यालय, महाविद्यालय अथवा प्रशिक्षण केन्द्र आधारभूत कौशल में प्रशिक्षण दिये बिना किसी व्यक्ति को जम्बोजेट के उड़ाने या हृदय ऑपरेशन करने की अनुमति नहीं देगा। ठीक उसी प्रकार शिक्षण भी कई कौशलों का समूह है जिनको सिखाया जाना भी इतना ही महत्वपूर्ण है।

☞ सूक्ष्म–शिक्षण में अधोलिखित विशेषताएँ हैं–

(1) शिक्षण–कौशल का विधिवत् प्रशिक्षण

(2) समय की बचत

(3) प्रतिपुष्टि सम्भव

(4) नवीन तकनीकी का शिक्षण में उपयोग

(5) अनवरत प्रशिक्षण का एक साधन

(6) परिवीक्षण को सरल बनाना

(7) शिक्षण पर शोध किये जाने का उत्तम साधन

सूक्ष्म–शिक्षण के लाभ

☞ सूक्ष्म अध्यापन के निम्नलिखित लाभ हैं–

(1) यह अध्यापन व्यवहार पर केन्द्रित विधि है।

(2) सूक्ष्म अध्यापन, यदि ठीक प्रकार से प्रयोग में लाई जावे तो प्रभावशाली रूप से प्रशिक्षणार्थियों का प्रशिक्षण करती है।

(3) प्रशिक्षणार्थी जब स्वयं द्वारा पढ़ाये गये पाठ की वीडियो फिल्म देखते हैं अथवा उसके बारे में अन्य लोगों से सुनते हैं तो उन्हें संतोष प्राप्त होता है।

(4) सूक्ष्म अध्यापन शिक्षण की जटिलता को कम कर देता है।

(5) सूक्ष्म–शिक्षण द्वारा प्रशिक्षणार्थी की प्रतिपुष्टि शीघ्रता से होती है।

(6) इस विधि से प्रशिक्षणार्थी को शिक्षण प्रक्रिया को बारीकी से समझने का अवसर मिलता है।

(7) सूक्ष्म–शिक्षण शिक्षण कौशल के विश्लेषण का अवसर प्रदान करता है।

(8) यह एक प्रभावशाली विधि है।

(9) सूक्ष्म–शिक्षण की सहायता से परिवीक्षण कार्य व्यवस्थित रूप से करने का अवसर प्राप्त होता है।

(10) यह विधि व्यक्तिगत शिक्षण पर बल प्रदान करती है।

हिन्दी साहित्य चैनल

(11) सूक्ष्म–शिक्षण से प्रशिक्षणार्थी के श्रम व समय दोनों की बचत होती हैं।

(12) इसमें शिक्षण व्यवहार का लेखा–जोखा रखा जाता है जिससे प्रक्रिया का विश्लेषण आसानी से किया जा सकता है।

सूक्ष्म–शिक्षण की सीमायें–

☞ सूक्ष्म–शिक्षा की निम्नलिखित सीमाएँ हैं–

1. साधनों का सामान्यतः अभाव होने के कारण सूक्ष्म–शिक्षण में वीडियों फिल्म जो कि सर्वाधिक प्रभावी है, का प्रयोग किया जाना सम्भव नहीं हैं।
2. सूक्ष्म–शिक्षण का उपयोग करने के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता है। ऐसे अध्यापकों की कमी है।
3. सूक्ष्म–शिक्षण के लिए अनेक कक्षा–कक्षों की आवश्यकता होती है।

भाषा पाठ योजना का प्रारुप व उसके पदों का ज्ञान

पाठ योजना को सर्वप्रथम प्रस्तुत करने का श्रेय हरबर्ट स्पेन्सर को जाता है। पाठ योजना वह पूर्व निर्धारित योजना होती है। पाठ योजना वह पूर्व निर्धारित योजना होती है जिसके अनुसार अध्यापक नवीन ज्ञान की विधियों एवं सहायक सामग्री के माध्यम से विद्यार्थियों के समक्ष एक सुनिश्चित अवधि के अन्दर प्रस्तुत करता है। इस प्रकार शिक्षण व्यवस्था के सभी पक्षों के व्यावहारिक रूप का आलेखन ही पाठ योजना है। पाठ योजना का निर्माण शिक्षण की पूर्व–अवस्था में किया जाता है।

पाठ योजना का महत्व एवं आवश्यकता –

1. पाठ योजना के द्वारा कक्षा में शिक्षण की क्रियाओं तथा सहायक सामग्री की पूर्ण जानकारी हो जाती है।

2. विषय वस्तु के स्वरूप एवं प्रस्तुतीकरण को निश्चित करने में सहायक है।

3. इसमें विषय वस्तु के सभी तत्वों का उल्लेख किया जाता है।

4. इसकी सहायता से शिक्षण क्रियाओं का अधिगम स्वरूपों से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।

5. छात्र अध्यापको को पाठयोजना कक्षाकक्ष की क्रियाओं के लिये रूपरेखा प्रदान करती है।

6. पाठ योजना के द्वारा पूर्व ज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान प्राप्त होता है जिससे पाठ में सरलता तथा नवीनता आती है।

7. शिक्षण की प्रभावशीलता, सफलता तथा प्रगति सुव्यवस्थित पाठ योजना पर निर्भर करती है।

8. छात्रों के स्तरानुसार पाठ योजना में शिक्षण बिन्दुओं का निर्धारण किया जाता है।

9. यह छात्रों की अधिगम उपलब्धि के मापन हेतु आधार प्रदान करती हैं

10. इसके द्वारा समय तथा शक्ति की बचत होती है।

11. पाठ योजना की सहायता से शिक्षण को व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाता है।

पाठ योजना निर्माण के महत्वपूर्ण तत्त्व –

1. अध्यापक का विषय–वस्तु पर पूर्ण अधिकार होना चाहिये।

2. अध्यापक में उद्देश्यों को व्यावहारिक रूप में लिखने की क्षमता एवं योग्यता होनी चाहिये।

3. अध्यापक को विभिन्न शिक्षण विधियों, प्रविधियों तथा सहायक सामग्री की जानकारी तथा प्रयोग में लाने की कुशलता होनी चाहिये।

4. अध्यापक में मूल्यांकन हेतु प्रश्नों का निर्माण करने का कौशल होना चाहिये।

5. अध्यापक को पाठ योजना के व्यावहारिक स्वरूप की जानकारी होनी चाहिये।

6. पाठ का प्रस्तुतीकरण सरल, क्रमबद्ध तथा आत्मविश्वास के साथ करना चाहिये।

7. पढ़ाई जाने वाली विषय वस्तु छात्रों के पूर्वज्ञान पर आधारित होनी चाहिये।

8. पूछे जाने वाले प्रश्न तथा सम्भावित उत्तरों को स्पष्ट रूप से लिखना चाहिये।

पाठ योजना के विभिन्न उपागम –

(i) हरबर्ट उपागम –

हरबर्ट महोदय के अनुसार बालक अनुभवों द्वारा ज्ञानार्जन करता है। उन्होंने स्पष्ट किया कि यदि नवीन ज्ञान का बालक के पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित कर दिया जाये तो बालक को सीखने में सुगमता रहती है। इसके लिये उन्होंने पाठ योजना के पाँच सोपान दिये जिनको 'हरबर्ट की पंच पदीय पाठ योजना' या 'पंच पदीय शिक्षाक्रम' कहते है।

हरबर्ट उपागम के औपचारिक पद निम्नलिखित है –

(i) प्रस्तावना, (ii) प्रस्तुतीकरण (iii) व्यवस्था, (iv) तुलना, (v) मूल्यांकन

(ii) डीवी एवं किलपैट्रिक उपागम –

इस उपागम में अधिगम का आधार योजना को माना जाता है। इस उपागम में सीखने के लिये अनुभवों को विशेष महत्व दिया जाता है। बालकों को ऐसे अनुभव दिये जाते है जिससे उनमें सामाजिक क्षमताओं का विकास हो सके। इस प्रकार यह उपागम अनुभवों पर आधारित है। महात्मा गाँधी ने भी अपनी बेसिक शिक्षा में इसका उपयोग किया है। इस उपागम में निम्न पदों का अनुकरण किया जाता है –

1. परिस्थिति उत्पन्न करना।

2. योजना का चुनाव करना।

3. योजना की रूपरेखा तैयार करना।

4. योजना का क्रियान्वयन।

5. कार्य का परीक्षण एवं लेखा–जोखा तैयार करना।

(iii) मूल्यांकन उपागम –

डॉ. बी. एस. ब्लूम द्वारा निर्धारित शिक्षण योजना को मूल्यांकन उपागम कहते है। यह उपागम उद्देश्य केन्द्रित है विद्यालयों में शिक्षणोपरांत बालकों के व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध में प्रमाणों के संकलन करने तथा उनकी व्याख्या करने की प्रक्रिया को ही मूल्यांकन उपागम कहते है। इस उपागम में पाठ का मूल्यांकन भी इस दृष्टि से किया जाता है कि निर्धारित उद्देश्य प्राप्त हुये अथवा नहीं।

मूल्यांकन उपागम के विभिन्न सोपान निम्नलिखित है –

1. शैक्षिक उद्देश्यों एवं व्यवहारगत परिवर्तनों का निर्धारण करना।

2. सीखने के अनुभव प्रदान करना।

3. व्यवहारगत परिवर्तनों का मूल्यांकन करना।

(iv) मौरीसन उपागम –

मौरीसन ने शिक्षण की एक चक्रीय योजना का प्रतिपादन किया। मौरीसन ने पाठ योजना को अधिक महत्वपूर्ण तथा वैज्ञानिक माना है। मौरीसन ने बालको की रूचि, दृष्टिकोण तथा दैनिक जीवन सम्बन्धी आवश्यकताओं पर विशेष बल दिया है। इस उपागम में डी वी तथा हरबर्ट की पंच पदीय प्रणाली का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है। मौरीसन ने भी पाँच पदों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित हैं –

1. अन्वेषण या खोजना

2. प्रस्तुतीकरण

3. आत्मीकरण

4. व्यवस्था या संगठन

5. वर्णन

(v) एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ योजना –

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद द्वारा संचालित क्षैत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों द्वारा पाठ योजना का अपना प्रारूप विकसित किया गया है। इसे पाठ योजना का भारतीय उपागम भी कहते है। इस पाठ योजना में शिक्षण के उद्देश्य, अध्यापक क्रियाओं तथा बालकों के मूल्यांकन को विशेष महत्व दिया गया है। साथ ही सीखने के अनुभवों को भी प्रधानता दी जाती है।

इस योजना में उद्देश्यों का निर्धारण ब्लूम की टैक्सोनोमी के आधार पर ही किया जाता है। इस पाठ योजना के तीन प्रमुख पहलू हैं – (i) अदा, (ii) प्रक्रिया, (iii) प्रदा

अदा के अन्तर्गत बालक के अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तनों का निर्धारण किया जाता है तथा प्रक्रिया में अध्यापक तथा छात्र दोनों की क्रियाएँ सम्मिलित होती है जिन्हें अधिगम तथा छात्र अनुभव कहते है तथा प्रदा में बालकों के वास्तविक व्यवहारगत परिवर्तन निहित होते है।

पाठ योजना निर्माण के पद –

पाठ योजना निर्माण करने के विभिन्न पद होते है जिनका अनुकरण करके छात्राध्यापक पाठ योजना का निर्माण कर सकते है। मुख्य पद निम्नलिखित है –

1. विषय, उप विषय, कक्षा, कालांश, अवधि, विद्यालय का नाम एवं प्रकरण

2. सामान्य उद्देश्य –

3. विशिष्ट उद्देश्य एवं अपेक्षित व्यवहारगत परिवर्तन

4. सहायक सामग्री

5. शिक्षण विधि एवं प्रविधि

6. पूर्व ज्ञान–नवीन पाठ से सम्बन्धित पूर्व जानकारी एवं अनुभव

7. प्रस्तावना–प्रश्नों द्वारा पूर्व ज्ञान की जाँच करना।

8. उद्देश्य कथन–प्रकरण तथा नवीन ज्ञान से सम्बंधित उद्बोधन।

9. उद्देश्य कथन करने के पश्चात श्याम पट्ट पर प्रकरण लिखना।

10. पाठ का प्रस्तुतीकरण–पाठ का प्रस्तुतीकरण निम्न प्रारूप के अनुसार किया जाता है।

- शिक्षण बिन्दु – पढ़ाया जाने वाला बिन्दु
- अध्यापक क्रियाएँ – विकासात्मक प्रश्न, प्रदर्शन, प्रयोग आदि करना।
- छात्र क्रियाएँ – उत्तर देना, सुनना, देखना, लिखना आदि।
- श्याम पट्ट कार्य – मुख्य बिन्दुओं को श्याम पट्ट पर लिखना, आदर्श प्रश्न लिखना, चित्र, चार्ट आदि बनाना।
- मूल्यांकन – सम्बंधित शिक्षण बिन्दु के मूल्यांकन के लिये पाठ योजना पुस्तिका में लिखना। मूल्यांकन में अधिकांश वस्तुनिष्ठ तथा लघु स्तरीय प्रश्नों का निर्माण होता है।

11. गृहकार्य

विभिन्न महाविद्यालयों अथवा विश्वविद्यालयों में अपनी–अपनी सुविधानुसार पाठ योजनाओं के प्रारुप प्रयुक्त किये जाते हैं, परन्तु निर्माण के पद सामान्यतः यही होते है। केवल विषय वस्तु का संगठन भिन्न–भिन्न प्रकार से कर लिया जाता है।

हिन्दी शिक्षक के लिये पाठ योजना की उपयोगिता –

हिन्दी अध्यापक पाठ योजनानुसार अपने शिक्षण को अधिक प्रभावशाली बना सकता है क्योंकि पाठ योजना में विषय वस्तु को पूर्व में ही एक विशेष क्रम में संगठित कर लिया जाता है तथा अध्यापक कक्षा में उसी क्रम में शिक्षण करता है। इस प्रकार शिक्षण करने पर बालक उस ज्ञान को बिना किसी परेशानी के शीघ्रता से ग्रहण कर लेते है। इसके अतिरिक्त हिन्दी शिक्षक के लिये पाठ योजना की उपयोगिता को निम्न बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. प्राप्त ज्ञान का नवीन परिस्थितियों में उपयोग करना सीखना।

2. प्रश्न पूछने की कुशलता का विकास करना।

3. समस्याओं के समाधान तथा व्याख्या की कुशलता का विकास करना।

4. परिकल्पनाओं सम्बन्धी कौशल का विकास करना।

5. सामान्यीकरण की क्षमता का विकास करना।

इस प्रकार पाठ योजनानुसार शिक्षण करने पर बालकों में उपर्युक्त योग्यताओं एवं कुशलताओं को विकसित किया जा सकता है। अतः हिन्दी अध्यापक को बालकों को विभिन्न कौशलों का विकास करने के यथा सम्भव अवसर प्रदान करने चाहिये जिससे बालक हिन्दी की समस्याओं का समाधान सरलता से कर सकें।

शिक्षण सहायक सामग्री का कक्षा शिक्षण में उपयोग

उद्योतन सामग्री के प्रकार –

1. श्रव्य सहायक सामग्री – मौखिक उदाहरण, रेडियो, टेप रिकॉर्डर, ग्रामोफोन आदि।

2. दृश्य सहायक सामग्री – श्यामपट्ट, बुलेटिन बोर्ड, फ्लेनील बोर्ड, मानचित्र, ग्लोब, चित्र, रेखाचित्र, कार्टून, मॉडल, पोस्टर, स्लाईड्स, फिल्म स्ट्रीप्स आदि।

3. श्रव्य–दृश्य सहायक सामग्री – चलचित्र, नाटक, कठपुतली, टेलीविजन आदि।

श्रव्य सहायक सामग्री

(1) मौखिक उदाहरण – मौखिक उदाहरणों का प्रयोग प्रमुखतया सूक्ष्म भावों के शब्द चित्र खींचने के लिए किया जाता है। किसी वस्तु स्थिति या विचार को मौखिक कथन या वार्तालाप के माध्यम से सरल स्वरूप प्रदान करने में उदाहरणों का प्रयोग जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में करते हैं।

(2) ग्रामोफोन – श्रव्य साधनों का पुराना उदाहरण हैं –ग्रामोफोन। इसके माध्यम से किसी घटना, विवरण, गीत, कहानी, वार्तालाप आदि सुना जा सकता है।

(3) टेप रिकॉर्डर – टेप रिकॉर्डर ग्रामोफोन का वैज्ञानिक एवं विकसित रूप है। इसके माध्यम से महत्त्वपूर्ण भाषण अथवा सामग्री टेप करके स्थायी तौर पर रखी जा सकती है।

(4) रेडियो – श्रव्य साधन और मनोरंजन उपकरण की दृष्टि से रेडियो सर्वविदित उपकरण है।

दृश्य सहायक सामग्री –

(1) श्यामपट्ट (ब्लैकबोर्ड) –

(अ) इसे अध्यापक का विश्वसनीय मित्र कहते हैं। यद्यपि यह स्वयं कोई दृश्य सामग्री नहीं हैं, तथापि इसका उपयोग एक अच्छी दृश्य सामग्री के रूप में किया जा सकता है।

(ब) श्यामपट्ट कार्य की सफलता अध्यापक पर निर्भर करती हैं। श्यामपट्ट का प्रयोग रेखाचित्र, ग्राफ, मानचित्र, पाठ सार तथा गृहकार्य देने के लिए किया जा सकता है।

(2) प्रतिरूप –

(अ) पर्यावरणीय अध्ययन शिक्षण में प्रतिरूप का बडा महत्त्व है। प्रतिरूप को कक्षा में प्रदर्शित करने से छात्रों को वास्तविक वस्तु का ज्ञान होता है।

- उदाहरण के लिए भूगोल शिक्षण में ज्वालामुखी पर्वत के प्रतिरूप को छात्रों को दिखाया जा सकता हैं

(ब) प्रतिरूप के अंग एवं कार्य आदि को सरल तथा स्पष्ट भाषा में छात्रों को समझाना चाहिए।

(3) बुलेटिन बोर्ड (सूचना पट्ट) –

(अ) यह प्लाई वुड, मोसोनाइट या मजबूत गत्ते का बना होता हैं। इस पर प्रदर्शन सामग्री को लगाने के लिए ड्राइंग पिन्स का प्रयोग किया जाता है।

(ब) बुलेटिन बोर्ड का प्रयोग प्रतिभाशाली छात्रों की स्वनिर्मित रचनाएँ, देश–विदेश की घटनाएँ एवं समाचार प्रतिदिन लिखकर किया जा सकता है।

(4) फ्लैनल (खादी) बोर्ड –

(अ) फ्लैनल बोर्ड प्लाई वुड अथवा भारी कार्ड बोर्ड पर गोंद पर चिपकाया हुआ फ्लैनल अथवा खादी का कपडा होता है जो कि एक सम धरातल पर चिपकाया जाता है।

(ब) कार्ड बोर्ड के छोटे–छोटे टुकडों पर तैयार चित्रों को फ्लैनल बोर्ड पर चिपकाया जाता हैं।

(5) रेखाचित्र –

(अ) रेखाचित्र विभिन्न विषयों के शिक्षण में बडी प्रभावोत्पादक सहायक सामग्री है।

(ब) इसमें रेखाओं तथा प्रतीकों के द्वारा अंतः संबंध स्पष्ट किए जाते हैं।

(स) इसमें विषय वस्तु से संबंध किसी चित्र अथवा परिस्थिति का रेखाओं के माध्यम से सांकेतिक प्रदर्शन होता है।

(6) मानचित्र –

(अ) मानचित्र छोटे पैमाने से प्रदर्शित सम धरातल पर दिखाये जाने वाला पृथ्वी का चित्र होता है। चित्रों के समूह को एटलस कहा जाता है।

(ब) इसके द्वारा छात्रों के सम्मुख अमूर्त वस्तुओं का ज्ञान मूर्त कर दिया जाता है।

(स) मानचित्र में अत्यधिक तथ्य नहीं होने चाहिए।

(द) संकेत स्पष्ट तथा पैमाना निश्चित होना चाहिए।

(य) मानचित्र का उपयोग उचित समय पर करना चाहिए तथा अवसर समाप्त होने पर उसे हटा देना चाहिए।

(7) चित्र –

(अ) चित्र बालकों की जिज्ञासावृत्ति एवं कल्पनाशक्ति को बढ़ाने में मदद करता है।

(ब) चित्र सरल, सही और सत्य रूप में प्रदर्शित करना चाहिए।

(स) चित्रों का आकार कक्षा के आकार के अनुकूल तथा उसमें शीर्षक दिया हुआ होना चाहिए।

(8) ग्लोब –

(अ) ग्लोब गोल आकृति पर त्रिपक्षीय चित्र है।

(ब) "ग्लोब पृथ्वी के धरातल का शुद्धतम रूप से प्रतिनिधित्व करता है। इसका प्रयोग उस समय करना चाहिए जब स्थान, आकार, दूरी, दिशा तथा भूमि की बनावट एवं सागर आदि की सापेक्षिक समस्याओं का प्रतिनिधित्व कराना हो।" –माइकेलिस

(स) ग्लोब प्रदर्शन विधि द्वारा पढ़ाए जाने वाले प्रमुख प्रकरण – 1. पृथ्वी की आकृति 2. उत्तरी–दक्षिणी गोलार्द्ध 3. अक्षांश–देशांतर रेखाएँ 4. पृथ्वी की गति आदि।

(9) चार्ट्स –

(अ) चार्ट किसी घटना या क्रांति का क्रमिक विकास दिखाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है।

(ब) चार्टों में जलवायु तथा तापक्रम आदि का प्रदर्शन भी सुगमता से किया जा सकता है।

(स) चार्ट के द्वारा किसी वस्तु का अंतः संबंध तथा संगठन, भावों, विचारों तथा विशेष स्थलों को दृश्यात्मक रूप से प्रदर्शित किया जाता है।

(10) पोस्टर, कार्टून पोस्टर –

(अ) यह सहायक सामग्री किसी सूचनात्मक ज्ञान एवं व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति को स्पष्ट करने का सरल माध्यम है।

उदाहरण – 1. भारत की विभिन्नता में एकता को भारत में बसने वाले लोगों को एक पोस्टर में अपनी–अपनी वेशभूषा

में प्रस्तुत कर दर्शाया जा सकता है।

2. बच्चों की अच्छी आदतों, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, धूम्रपान, वनों की सुरक्षा आदि को पोस्टर एवं कार्टून के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है।

(ब) पोस्टर का प्रयोग करने से पूर्व उनके आकार, प्रकार, रंग व उपयुक्तता का पूरा–पूरा ध्यान रखना चाहिए क्योंकि त्रुटिपूर्ण पोस्टर एवं कार्टून से गलत धारणा बन जाती है।

(11) स्लाइड, फिल्म स्ट्रिप्स –

(अ) स्लाइड तथा फिल्म स्ट्रिप्स की सहायता से बालक प्रत्येक चीज को बडे आकार में पर्दे पर देखते हैं।

(ब) यांत्रिक उपकरण के माध्यम से एक–एक परिस्थिति को जिन चित्रों के सहारे प्रदर्शित किया जाता है, वह स्लाइड्स होती है।

(स) स्लाइड्स छोटे आकार की फोटो नेगेटिव रिल तथा काँच पर कैमरे द्वारा उतारे गए चित्र होते हैं जिन्हें फिल्म स्ट्रिप प्रोजेक्टर द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

श्रव्य–दृश्य सहायक सामग्री एवं उपयोग विधि –

(1) नाटक –

(अ) किसी भी विषय को रंगमंच पर नाटक के माध्यम से सजीव बनाया जा सकता है।

(ब) इनके द्वारा संवाद बोलने एवं रंगमंच पर अभिनय करने की कला में दक्षता आती है।

(स) नाटक के माध्यम से पढ़ाये जाने वाले प्रमुख प्रकरण – भगवान राम का आदर्श चरित्र, पन्नाधाय का त्याग, सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र आदि।

(2) चलचित्र –

(अ) चलचित्र में छात्र व्यक्तियों को वास्तविक परिस्थितियों में कार्य करते हुए देखता है।

(ब) शिक्षण में चलचित्रों का प्रयोग प्रथम महायुद्ध के पश्चात् होने लगा था परंतु उनका 1931 के बाद पर्याप्त मात्रा में

उपयोग होने लगा।

(स) चलचित्र छात्रों की सभी ज्ञानेन्द्रियों को प्रभावित करते हैं। शिक्षाप्रद चलचित्रों को छात्रों को देखने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

(3) टेलीविजन –

(अ) टेलीविजन जनसंपर्क का अत्यंत प्रभावशाली माध्यम है जिसके द्वारा समाचार–पत्रों, रेडियो, सिनेमा आदि सभी की एकसाथ पूर्ति हो सकती है।

(ब) सरकार इसके माध्यम से नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षिक आदि पक्षों की जानकारी देती है।

(स) टेलीविजन का आविष्कार 1925 में डॉ. बेवर्ड ने किया था। हमारे देश में सर्वप्रथम 1959 में नई दिल्ली में इसका केन्द्र खोला गया।

(4) कठपुतली –

(अ) निर्जीव कठपुतलियों के माध्यम से पर्यावरणीय अध्ययन शिक्षण की अधिकांश विषय वस्तु अध्यापन नाटकीयकरण विधि से बङे प्रभावशाली ढंग से किया जाता है।

सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन

- यह मूल्यांकन की नवीन प्रणाली है जिसे ग्रेडिंग प्रणाली भी कहते हैं।
- पूर्व मूल्यांकन पद्धतियों/प्रणालियों में केवल ज्ञानात्मक पक्ष का मूल्यांकन किया जाता था लेकिन सी.सी.ई. के अन्तर्गत विद्यार्थी के ज्ञानात्मक पक्ष के साथ–साथ विद्यालय के अंदर की जाने वाली समक्ष गतिविधियों द्वारा मूल्यांकन करते हैं।
- ''राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005'' में शिक्षा और परीक्षा प्रणाली में सुधार, बदलाव की सिफारिश की गई थी।
- किसी भी शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को समाज के लिए उत्तरदायी और श्रेष्ठ नागरिक बनाना है तथा अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए वे अपनी आजीविका चला सकें। अभी तक वर्ष के अंत में 3 घंटे की परीक्षा ही बच्चे की क्षमता को मापने की कसौटी थी। किसी कारणवश पूरे वर्ष मेहनत करने वाला छात्र वार्षिक परीक्षा में न बैठे सके तो उसका साल गया और इस बात का मानसिक तनाव जिसे झेलना पङता है वही समझ सकता है। पारंपरिक शिक्षा व्यवस्था में हम अपने उद्देश्यों से कहीं भटक से गए थे। इसलिए जरूरत थी ऐसी शिक्षा की जिसमें बच्चा अपने विभिन्न कौशलों को विकसित कर सके, ज्ञान अर्जित कर सके, जीवन मूल्यों और मानवीय आदर्शों को अपना सके। इन सबका समाधान लेकर उभरी सतत और व्यापक मूल्यांकन की पद्धति। छात्रों की समझ और ज्ञान को समृद्ध बनाने और शैक्षिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कक्षा में विभिन्न अभ्यास करवाए जाने की बात को बल देने की बात कही गई न कि रटकर सीखने की। संकल्पनात्मक विकास की इस प्रक्रिया में भाषा, प्रस्तुतीकरण, संकल्पनाओं और तार्किकता जैसे महत्वपूर्ण बिंदुओं को संभावित किया गया है।

अधिगम की विशेषताएँ –

- सभी बच्चे सीखने में सक्षम और प्राकृतिक रूप से प्रेरित होते हैं।
- अधिगम की प्रक्रिया में समझ और क्षमता का विकास महत्वपूर्ण है।
- अमूर्त्त सोच और समझ एवं प्रतिक्रिया भी अधिगम की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण पक्ष है।

- अनुभव द्वारा चीजों को बनाकर, प्रयोग से पढ़कर, चर्चा करके, पूछकर, सुनकर, देखकर, प्रतिक्रिया से, बोलकर या लिखकर आदि तरीकों से बच्चे सीखते हैं।
- बच्चा चीजें रट सकता है परंतु इससे ज्यादा जरूरी है बोध। अधिगम वही है जब समझकर आस–पास के संसार से संबंध स्थापित कर सके।
- अधिगम की प्रक्रिया विद्यालय तक ही सीमित नहीं है। सीखना तो निरंतर होता रहता है।
- कला और अन्य गतिविधियाँ भी अधिगम की प्रक्रिया में सहायक होती हैं।
- अधिगम की गति, विविधता, रोचकता आदि पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।
- कोई भी कार्य बच्चा यंत्रवत कार्य न करे बल्कि अपनी समझ बनाकर करे।

मूल्यांकन की आवश्यकता –

- मूल्यांकन के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। लेकिन जो मूल्यांकन भय, डर व चिंता का विषय हो वह सीखने की प्रक्रिया में बाधक है। अतः जब मूल्यांकन को अध्यापन–अधिगम प्रक्रिया में शामिल कर दिया जाए तो भय होगा ही नहीं। इससे सीखने की प्रक्रिया का निदान, उपचार और वृद्धि की जा सकेगी। विद्यार्थी के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए शैक्षिक और सहशैक्षिक क्षेत्र को भी मूल्यांकन के दायरे मे लाना जरूरी है। मूल्यांकन एक निरंतर प्रक्रिया है जिससे छात्रों की क्षमताओं और कमियों को बार–बार प्रकट कर सुधार लाने का प्रयास किया जाए।

मूल्यांकन के आधार –

- पाठ्यपुस्तक और उससे बाहर की सीमाओं में की गई प्रगति के बारे में सूचना एकत्र करने के विभिन्न तरीकों का उपयोग।
- सूचनाएँ एकत्र करना और इसका अभिलेखन।
- प्रत्येक छात्र की प्रतिक्रिया और सीखने के तरीके तथा ऐसा करने में लगने वाले समय को महत्त्व देना।
- छात्र की प्रतिक्रिया पर संवदेनशीलता होना और निरंतर रिपोर्ट तैयार करना।
- 'फीडबैक' देना। जिससे छात्र सकारात्मक प्रगति कर सके।
- अध्यापकों को मूल्यांकन करते समय कुछ बातें जो भूल से भी नहीं करना चाहिए –
    - छात्रों को योग्यता के आधार पर श्रेणी में बाँटना।
    - बुद्धिमान और कमजोर के बीच तुलना।
    - नकारात्मक वक्तव्य देना।
    - किसी भी तरीके से डराना।

निरंतर/सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन

- यह मूल्यांकन की ऐसी प्रणाली है। जिसमें छात्रों के चहुँमुखी विकास के सभी पक्ष शामिल है।
- इसमें एक ओर मूल्यांकन में निरंतर और व्यापक रूप से सीखने की प्रक्रिया का आंकलन तथा व्यावहारिक रूप से समाज में सामंजस्य स्थापित करने का भी मूल्यांकन होगा।
- यहाँ निरंतरता/सतत पर विशेष बल दिया गया है अधिगम प्रक्रिया पूरे सत्र चलती है ताकि विद्यार्थी सहज रूप से सीख सके।
- इसमें मूल्यांकन की नियमितता अधिगम अंतरालों का निदान, सुधारात्मक उपायों का उपयोग, स्वयं मूल्यांकन के लिए फीडबैक आदि बहुत जरूरी है।
- व्यापक का तात्पर्य है शिक्षा के साथ–साथ सह शैक्षिक पक्षों को शामिल करना।
- क्षमताएँ, मनोवृत्तियाँ और सोच पाठ्यपुस्तक के साथ–साथ विभिन्न गतिविधियों में प्रकट होता है। इसलिए है शैक्षिक और सहशैक्षिक पाठ्यक्रम की जरूरत है।

- सीखने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण हैं, मूल्यांकन अध्यापन–अधिगम का आविभाज्य हिस्सा हो, नियमित निदान, फीडबैक का महत्त्व समझा जाए आदि। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सी.सी.ई. को लागू किया गया। जिसकी विशेषताएँ हैं –

1. निरंतर मूल्यांकन से छात्र में सुधार सहज व सरल है। वह बोझ से मुक्त होकर अपनी क्षमता अनुसार कार्य करता है।

2. छात्र विशेष की जरूरत को समझकर निदान प्रस्तुत किया जा सकता है।

3. बच्चे स्वयं भी अपनी कमियों को जान सकेंगे और दूर कर सकेंगे। अध्यापक से ही नहीं अपने साथियों से भी बहुत कुछ सीख पाएंगे।

4. छात्र की समझ, क्षमता को विकसित होने के अनेक अवसर मिलने से स्वतंत्र रूप निर्णय लेने की क्षमता का भी विकास होता हैं

5. इसके द्वारा विद्यार्थी का बौद्धिक, भावनात्मक, शारीरिक, सांस्कृतिक और सामाजिक विकास सुनिश्चित किया जा सकता है। परीक्षा मूल्यांकन नहीं है यह केवल मूल्यांकन का साधन मात्र है। मूल्यांकन अध्यापन अधिगम प्रक्रिया का अविभाज्य हिस्सा है। इसे विभिन्न सोपानों में देखा जा सकता हैं :–

- पहले सोपान में विभिन्न साधनों/माध्यमों का प्रयोग करते हुए कई तरीकों से जानकारी एकत्र की जाती है। पर्यवेक्षण, वार्तालाप, चर्चा, कार्य परियोजनाएँ आदि के द्वारा जानकारी जमा की जाती है।
- दूसरे सोपान में इस जानकारी को अभिलिखित करने की आवश्यकता है। अध्यापन तथा अधिगम को सुधारने के लिए इनका पर्याप्त महत्व है। इसके लिए साक्ष्य के रूप में छात्र के कार्यों के नमूने संगृहीत किए जाते हैं। रिपोर्टिंग में यह जरूरी है कि विभिन्न क्षेत्रों में छात्र की प्रगति दर्शाई जाए।
- तीसरे सोपान में उपर्युक्त रिपोर्ट से अध्यापक, छात्र और माता–पिता मदद लेते हुए छात्र की उन्नति का प्रयास करेंगे। सीखने की प्रक्रिया में छात्र भी लाभान्वित होंगे तथा माता–पिता का सहयोग भी मिलेगा। अंतिम सोपान में अध्यापक अधिगम को बढ़ाने के लिए अभ्यास कार्य का सहारा लेकर सुधार कार्य कराएगा।
- राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 के दिशा–निर्देशों के आधार पर इसे लागू किय गया।
- इसके अन्तर्गत 6 प्रकार की परीक्षायें रखी गई है।

	अंक
1. **Formative –** I	10 %
2. **Formative –**II	10 %
3. **Summtive –** I	20 %
4. **Formative –** III	10 %
5. **Formative –** Iv	10 %
6. **Summmaive –** II	40%

- **CCE** का विद्यार्थी को निम्नप्रकार ग्रेड दिये जाते हैं –

  A_1 – 91 से 100 %

  A_2 – 81 से 90 %

  B_1 – 71 से 80 %